ई सभ अकथ कहानी

(श्रीरामानंद बीडकर महाराज जी का हिंदी चरित्र)

डॉ. गो. रा. कुलकर्णी
एम्. ए., पीएच्. डी., डी. लिट्.

प्रकाशक : श्री. विलास चंद्रकांत गावकर
१८१/१६, जेर बिल्डिंग,
डॉ. आंबेडकर रोड, परेल, मुंबई.

मुद्रक : एस्कायर प्रेस प्राइवेट लि.
मोहत्ता भवन, दुसरा मजला,
डॉ. ई. मोझेस रोड, वरली, मुंबई - ४०० ०१८

अक्षर संयोजन : श्री. अमित गो. कुलकर्णी, सांगली - ४१६ ४१६
दूरभाष : २३३२०८९

प्रकाशन तिथी : फाल्गुन कृष्ण १०, शक १९२९
श्रीसद्गुरु बीडकर महाराज पुण्यतिथी
मंगलवार, दि. १ अप्रैल २००८

मूल्य : रु. १३०/-

भूमिका

संत-सत्पुरुष भगवान् के अवतार होते हैं। वे भगवान् के मानवी सगुण रूप होते हैं और भक्तों पर कृपा करने के लिए अवतरित होते हैं। ऐसे सगुण चरित्रों का पवित्र भक्ति-भाव से कथन-पठन-गायन और निरूपण करने से भगवद् भक्ति का सौभाग्य मिलता है।

स्वयं भगवान् श्रीदत्तात्रेय के अवतार श्रीअक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ जी के शिष्योत्तम श्रीरामचंद्र (श्रीरामानंद) बीडकर महाराज जी का चरित्र लोक-विलक्षण और लोकोत्तर है। जीवन के बड़े-बड़े अनेक चढ़ावों-उतारों से गुज़रकर उन्होंने आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त किया था। उनका जीवन-चरित्र मानवी जीवन में महत्प्रेरणाएँ भरनेवाला है।

श्रीस्वामी समर्थ जी के स्वरूप-संप्रदाय में श्रीबीडकर महाराज जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मराठी भाषिकेतर श्रद्धालुओं को उनका परिचय मिले, इसलिए प.पू. श्रीअशोक काका जोशी महाराज जी ने उनका हिंदी चरित्र लिखने की आज्ञा दी। उन्होंने अवलोकन कर के उपयुक्त सूचनाएँ दीं। मैं ऋणी हूँ।

इस चरित्र-ग्रंथ के लिए १) गोपाळबुवा केळकरकृत श्रीस्वामी समर्थ बखर, २) श्रीदिगंबरदास महाराजकृत संक्षिप्त सद्गुरू - चरित्र, ३) श्रीदिगंबरदास महाराजकृत श्रीबीडकर महाराज - ओवीबद्ध चरित्र, ४) रावसाहेब, माझा मोती दाणा, ५) ल. ग. बापटकृत श्रीसद्गुरु रामानंद बीडकर महाराज चरित्र, ६) शं. द. रबडेकृत श्रीरामानंद बीडकर, ७) सद्गुरु चरणांखाली - सं. डॉ. अजित कुलकर्णी, ८) डॉ. वि.दा.ऊर्फ भाऊ देशपांडेकृत आत्मचरित्र आदि मराठी ग्रंथों से सहायता ली है। लेखक इन सबका आभारी है। इस ग्रंथ के लिए डॉ. सौ. अवंतिका कुलकर्णी जी, श्री विजय सरवटे जी और श्री विजय जोशी जी ने अमूल्य सहायता की। उनके प्रति धन्यवाद।

बड़े सौभाग्य की बात है कि सद्गुरु बीडकर महाराज का चरित्र लिखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह उन्हींकी कृपा है। आशा है, भक्त-जनों को यह ग्रंथ प्रिय होगा।

- लेखक

अनुक्रमणिका

१. कुल-परंपरा

श्रीस्वामी समर्थ

स्वयं भगवान् श्रीदत्तात्रेय आधुनिक काल में श्रीस्वामी समर्थ के रूप में मंगलवेढा (जि. सोलापुर) में प्रकट हुए। फिर वे अक्कलकोट में जाकर बस गए। वहाँ के राजा मालोजीराजे भोसले उनके अनन्य भक्त बन गए। वहाँ श्रीस्वामीजी ने अनंत लीलाएँ कीं। वे अक्कलकोट में बस गए थे, इसलिए अक्कलकोटनिवासी श्रीस्वामी समर्थ या अक्कलकोट स्वामी कहलाए। वे स्वयं श्रीमत् नृसिंह सरस्वती थे। श्रीसद्‌गुरु दिगंबरदास महाराज जी ने कहा है, "जान लो कि स्वयं दत्तात्रेय और कैलाशनाथ सदाशिव ही श्रीमत् नृसिंह सरस्वती थे। वे ही अक्कलकोट निवासी स्वामी समर्थ महाराज हैं। गाँठ बांध लो कि श्रीस्वामी समर्थ देवाधिदेव हैं। सच्ची भक्ति से जो इसे अनुभव करेगा, वही इस सत्य को जान पाएगा।"

श्रीस्वामी समर्थ जी ने असंख्य भक्तों पर कृपा की। उनके अनेक शिष्य विख्यात हो गए, जिनमें मुंबई के श्रीस्वामीसुत महाराज ऊर्फ हरिभाऊ, अक्कलकोट के श्रीबालाप्पा महाराज, कोल्हापुर के श्रीकृष्ण सरस्वती, नगर के श्रीनाना रेखी और पुणे के श्रीबीडकर महाराज आदि प्रमुख हैं। इन प्रमुख शिष्यों में श्रीबीडकर महाराज को सब के अंत में उन्होंने अपना शिष्य बनाया था। श्रीबीडकर महाराज के चरित्र में भोग और योग, आसक्ति और विरक्ति का ऐसा चढ़ाव-उतार और उथल-पुथल दिखाई देती है कि हम दंग रह जाते हैं। सब लोग उनके आध्यात्मिक अधिकार का लोहा मानते थे।

पूर्वज

श्रीसद्‌गुरु बीडकर महाराज पार्थगोत्री देशस्थ ब्राह्मण थे। ब्राह्मण थे, किंतु घराना पेशे से सरदारों का था। उनके पिता का नाम बलवंतराव और माता का गंगूबाई था। उनके दो पुत्र और चार कन्याएँ थीं। श्रीमहाराज सब से छोटे थे।

उनका जन्म माघ शुक्ला सप्तमी (अष्टमी क्षय), मंगलवार, शके १७६०; (दि. २२ जनवरी १८३८) के दिन अपराह्न में हुआ । उनका नाम रामचंद्र रखा गया, लेकिन बाद में उन्हें रामानंद नाम मिला । स्वयं भगवान् श्रीदत्तात्रेय ने उनका नाम रामानंद रखा था ।

श्रीरामानंद महाराज के पुरखों की कहानी बड़ी रोचक है । इस घराने के मूल पुरुष शंकरराव थे। उनके बेटे माणकोजी पंत बड़े बहादुर और होशियार थे । वे सम्राट अकबर के दीवान रहे । उनके बेटे गजाननराव एलिचपुर आ गए और वहाँ के शाह को उन्होंने अपनी बहादुरी दिखाई । वहाँ उन्हें इनाम में कुछ गाँव मिले । वे वहाँ सरदार बने । उन्होंने बड़ी धन-दौलत कमाई और बड़ा नाम पाया।

लेकिन उनके कोई संतान नहीं थी । संतान-प्राप्ति के लिए उन्होंने काशी से लेकर रामेश्वर तक दूर-दूर की तीर्थयात्राएँ कीं । आखिर एक औलिया के कृपा-प्रसाद से उनको एक बेटा प्राप्त हुआ । विलक्षण बात थी कि उस माँ ने बच्चे के साथ एक नाग को जन्म दिया। वह नाग घर का एक सदस्य बन गया । गजाननराव जब पूजा करने बैठते थे, तब वह उनके पास जा बैठता था । माँ जब अपने बेटे को दूध पिलाती थी, तब वह भी उसकी गोद में जा बैठता था। वह नाग बच्चे के साथ-साथ पल रहा था ।

सात वर्ष बाद गजाननराव ने अपने बेटे का जनेऊ बड़े उत्साह से रचा । बेटे की बुआ चूल्हे के अंगारे लेकर बाहर जा रही थी। जल्दबाज़ी में उसने वे अंगारे पास की एक कड़ाही में डाल दिए, जिसमें वह नाग कुंडली मारकर बैठा था । अंगारे पड़ते ही वह तड़पकर मर गया और उधर वह बटु ऐन मौके पर वेदी पर अचानक बेहोश होकर मर गया । बड़ी तपस्या से पाए हुए बेटे के अचानक चले जाने से माता-पिता को अपार दुःख हुआ। वे संसार से विरक्त हो गए और धर्म-कर्म में डूब गए ।

कुछ दिनों बाद वह नाग माँ के स्वप्न में आ गया । उसने कहा कि, जिसने मुझे जलाकर मार डाला उसका वंश मैं चलने नहीं दूँगा । तुम्हारा वंश भी सात पीढ़ियों तक चलाऊँगा । गजाननराव और उनकी पत्नी को संतोष हुआ कि अपना वंश सात पीढ़ियों तक तो चलता रहेगा । समय पाकर उन्हें बेटा हुआ,

जिसका नाम था कृष्णाजी पंत । वह भी अपने पिता की तरह बहादुर निकला । एलिचपुर के सरदार के नाते उसने नाम कमाया । शाह से उसे एदलाबाद और रावेर की महालदारी मिल गई ।

कृष्णाजी पंत के बेटे विश्वनाथराव अहमदनगर के मुल्क में आकर बस गए । उन्होंने वहाँ के कांबर गाँव और चांभुरडी गाँव के कुलकर्ण पद (पटवारी) के इनाम के हक प्राप्त किए । उन्होंने बड़ी संपत्ति पाई और बड़े बड़े महल बनवाएँ। उनके बेटे माधवराव बड़े बहादुर निकले । उन्होंने बहादुरी दिखाकर हैद्राबाद की हुकूमत से चालीस हज़ार की ज़ागीर पाई थी । उन्हें बीड शहर में पोद्दारी का हक भी मिला । वे शाह के वफादार सेवक थे । पोद्दारी के कारण वे पोतदार कहलाए।

माधवराव के बेटे विनायकराव बड़े कुशल कारोबारी थे । उन्होंने अपने पुरखों की ज़ागीर कायम रखी । उन्हें काटेमार्डी (सोलापुर)की सरसूबेदारी मिली । वे करकमभोसे गाँव में बस गए । उनके बेटे चिंतामणराव ने कुशलता से पुरखों की जायदाद सँभाली । उनके कोई संतान नहीं थी, इसलिए वे धर्म-कर्म और तीर्थ-यात्राओं में डूबे रहते थे। उन्होंने अनेक तीर्थ क्षेत्रों में धर्मशालाएँ और घाट बनवाए। काशी में उन्होंने जो घाट बनवाया था, उसे माणको जी शंकर का घाट कहते हैं । काशी में गंगा जी में स्नान करते समय उन्हें एक दिन डुबकी लगाने पर रेत में श्रीहनुमान जी की मूर्ति मिली । ईश्वरी कृपा समझकर उन्होंने बड़ी लगन से श्रीहनुमान जी की सेवा की, जिसके फलस्वरूप ने उन्हें ढलती उम्र में पुत्र-लाभ हुआ।

चिंतायणराव के बेटे का नाम था मुकुंदराव। वे बड़े बहादुर थे । वे मुसलमानी हुकूमत के सरदार-सलाहकार थे। सवाई माधवराव पेशवा की हैद्राबाद के शाह के साथ खर्डे के पास बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें पेशवा ने शाह को शिकस्त दी । तब पेशवा उसके सलाहकार-मुशीर उल् मुल्क और मुकंदराव को पकड़कर पुणे ले आए । उन्हें वहाँ नज़र कैद में रखा गया। तब मुकंदराव का मन राजनीति से उचट गया और वे अपना समय धर्म-कर्म में लगाने लगे । वे कुछ दिन मराठवाडा के बीड में रहते थे, इसलिए लोग उन्हें बीडकर कहने लगे । पुणे में वे अपना समय महाभारत, भागवत, रामायण आदि ग्रंथों के पठन-श्रवण में बिताते थे । उनके दो पुत्र थे - बलवंतराव और माधवराव ।

सवाई माधवराव पेशवा के गुज़र जाने पर मुशीर उल् मुल्क पुणे से लौट गए। मुकुंदराव को भी उन्होंने चलने का आग्रह किया, किंतु उन्होंने मना कर दिया। उन्होंने कहा कि, "पेशवा की इजाज़त के बिना लौटने पर शाह नाराज़ होगा। इस तरह भाग जाना अच्छा नहीं।" उन्होंने अपने बेटों को भी हैद्राबाद जाने से मना किया। बाद में पेशवा की गद्दी पर दुसरे बाजीराव बैठे, तब मुकुंदराव ने उनसे बीड लौटने की इजाज़त माँगी, परंतु दुसरे बाजीराव पेशवा ने उनकी योग्यता देखकर अपनी ही खिदमत में रहने की आज्ञा की। उन्होंने मुकुंदराव के बड़े बेटे बलवंतराव को पलंग और पूजा की सुरक्षा तथा नांदुरकी किले की देखरेख का काम सौंपा। छोटे बेटे माधवराव को कोंकण के सुवर्णदुर्ग तहसील का कारोबार सौंपा। कुछ वर्षों के बाद माधवराव अचानक गुज़र गए। उनके कोई संतान नहीं थीं। मुकुंदराव को बुढ़ापे में पुत्र-शोक हुआ। उन्हें नाग देवता के शाप का स्मरण हुआ। उन्होंने बलवंतराव को कुल-दायित्व का भार सौंपा और वे भगवान् के भजन में डूब गए।

श्रीमहाराज के पिता बलवंतराव

श्रीबीडकर महाराज के पिता बलवंतराव बड़े कद्दावर और साढे छः फीट ऊँचे थे। वे अपने काम में वफादार और होशियार थे। वे बड़े बहादुर और साहसी थे। घुड़सवारी में और निशानेबाजी में कुशल थे। इसलिए पेशवा दुसरे बाजीराव ने खुश होकर उन्हें अपना शरीर-रक्षक बनाया। एक बार पेशवा पर हमला हुआ तो बलवंतराव ने जान पर खेलकर दुश्मन को परास्त किया। उनका पहला विवाह असफल रहा। पेशवा ने उन्हें दूसरे विवाह के लिए पैसे दे दिए। उनका विवाह वाघुली के व्यंकटराव कुलकर्णी की कन्या गंगूबाई के साथ हुआ। उनके दो पुत्र और चार कन्याएँ हुईं। एक कन्या बचपन में ही भगवान् को प्यारी हो गई और शेष तीन संतानहीन रहीं। बड़ा बेटा बापू था और छोटा रामचंद्र। रामचंद्र पिता का प्यारा था।

बलवंतराव की सेहत अच्छी थी और उन्होंने लंबी उमर भी पाई थी। वे निन्यान्नबे वर्ष के होकर गुज़रे। इस बीच पेशवाई डूब गई और अँग्रेज़ों की हुकूमत आई।अँग्रेज़ों के एल्फिन्स्टन साहब ने बलवंतराव को पेन्शन देने की पेशकश

की, लेकिन उन्होंने पेन्शन लेने से इन्कार किया। उन्होंने सोचा कि, अब तक पेशवाओं की रोटी खाई अब बेईमान होकर म्लेच्छों की रोटी क्या खाएँ ? उन्होंने अपने जीवन में अपने पूर्वजों द्वारा कमाई जायदाद का न ध्यान रखा था, न पूँजी भी जुटाई थी, इसलिए उनकी मृत्यु के समय बस, छोटी-सी पूँजी बची थी। लेकिन गंगूबाई ने हिम्मत नहीं हारी। अँग्रेज़ों ने उसे सौ रुपयों की पेन्शन देने का हुक्म दिया, लेकिन उस स्वाभिमानी नारी ने उसे भी ठुकरा दिया।

बलवंतराव के तेरही दिन का क्रिया-कर्म पूरा होते ही बड़ा बेटा बापू लापता हो गया, जिसका पता वर्षों नहीं चला। घर में सफेद रंग की दुधारू गाय थी, वह भी गायब हो गई। इन विषम परिस्थितियों में भी गंगूबाई ने धीरज से काम लिया। छोटे रामचंद्र को पाठशाला में दाखिल किया।

* * *

श्रीरामानंद उवाच

ब्रह्मा भी किसीकी ज़िंदगी बढ़ा या घटा नहीं सकता। प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है। आत्मघात कर के प्रारब्ध को मिटाया नहीं जा सकता। आत्मघात का पाप भी फिर भोगना पड़ेगा। इसलिए भगवान् की शरण में जाओ। दूसरा कोई चारा नहीं।

२. बचपन के दिन

पाठशाला में

रामचंद्र की पढ़ाई शुरु हो गई । गुरु जी ने गृहपाठ बताया था, उसे पूरा नहीं किया था, इसलिए नाराज़ होकर वे उसे डाँटने लगे । रामचंद्र बोला, "हमारे भाग में विद्या होगी, तो मिलेगी।" तिस पर गुरुजी गुस्से से ताना देते हुए बोले, "ब्राह्मण के बेटे हो । गले में जनेऊ है । मधुकरी जरूर मिलेगी।" सुनकर रामचंद्र को गुस्सा आया। न आव देखा, न ताव। उसने जनेऊ तोड़ दिया, लंगोटी उतारकर फेंक दी और पाठशाला से निकलकर तुलसी बाग के मंदिर में जा बैठा । वहाँ बच्चों के साथ गुरु जी भी आ गए । उसे उठाकर पाठशाला में ले गए और सज़ा देकर अच्छा बर्ताव करने की कसम उससे ले ली।

डॉ.गणपतराव के घर

बालक रामचंद्र का सलोनापन, आँखों की सुंदरता और चतुराई देखकर उसके पिता के दोस्त डॉ. गणपतराव ने उसे अपने घर में रख लिया । वे नाटकों के बड़े शौकीन थे । वे उसके खाने-पीने, पहने-ओढ़ने का बड़ा खयाल रखते थे। वे उसे नाटक देखने के लिए ले जाते थे । एक दिन उन्होंने कहा कि, "तुम साड़ी और नथनी पहन, आँखों में काजल लगा । तुम नाटक में स्त्री-पार्ट खेलोगे तो बड़ा फबेगा ।" तब उसने तपाक से उत्तर दिया कि "पहले नीचे का काट डालना पड़ेगा।" डॉक्टर साहब ने उसे बहुत मनाने की कोशिश की । अंत में उसे घर पहुँचा दिया गया ।

त्रिंबकराव किबे के घर

रामचंद्र के पिता बलवंतराव के दोस्त त्रिंबकराव किबे थे । एक दिन वे उसके घर आए । घर के हालत देखकर उन्हें हमदर्दी हो गई और वे पढ़ाई के लिए

उसे अपने घर ले आए । उन्होंने देखा कि बच्चे का ध्यान पढ़ाई में नहीं है, तो उसे बाज़ार से खरीदारी का काम सौंपने लगे । वह चोखा व्यवहार करता था । अंत में उसने घर लौटने का मन बना लिया, तो किबे ने उसे पचास रुपए दिए । घर लौटकर उसने पुरानी चीजों के लेन-देन का काम चालू किया। वह शहर भर घूमकर पुरानी चीजें मोल-तोल कर के खरीदता था और दुकानदारों को बेच देता था, लेकिन इसमें बड़ा मुनाफा नहीं होता था, इसलिए वह खुश नहीं था ।

पंढरपुर की वारी

हर साल ज्येष्ठ कृष्ण नवमी के दिन आलंदी से श्रीज्ञानेश्वर महाराज की पालखी निकल कर आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन पंढरपुर जाती है । इस वारी (यात्रा) में हजारों-लाखों लोग भगवान् श्रीविठ्ठल का संकीर्तन करते जाते हैं। पालकी आलंदी से दशमी के दिन पुणे में आती है और दूसरे दिन आगे बढ़ती है। रामचंद्र के मन में भक्ति-भावना थी । उसके मन में वारी में शामिल होकर भगवान् विठ्ठल के दर्शन करने पंढरपुर जाने की इच्छा जागी। उसने कुछ बच्चों को साथ आने के लिए मना लिया । रामचंद्र ने पंढरपुर जाने की बात माता को बता दी थी।

एकादशी के दिन पालकी आगे निकली । बच्चे उत्साह के साथ भजन गाते हुए उसके साथ चलने लगे। ५-६ मील पैदल चलने के बाद कुछ बच्चे थक गए और घर लौटने की ज़िद करने लगे । रामचंद्र ने उन्हें समझाने-बुझाने और धीरज बँधाने की कोशिश की, लेकिन वे घबराकर लौट गए । दो बच्चे बचे, लेकिन वे भी थोड़ी दूर चलने पर थक गए। आखिर रामचंद्र ने पुणे की ओर जानेवाली एक बैलगाड़ी में बिठाकर उन्हें लौटा दिया । वह खुद थक गया था, लेकिन दृढ़ निश्चय के साथ अकेला वारी के साथ चला।

बीस मील चलने पर रामचंद्र के पैर सूज आए थे। बड़ी वेदना थी । उस छोटे बच्चे को देखकर एक वारकरी बुढ़िया ने उसके पैरों को तेल से मला और गरम पानी से सेंका । वारी के जोश में रामचंद्र पंढरपुर पहुँचा ।

भगवान् विठ्ठल के दर्शन

पंढरपुर में आषाढ़ी एकादशी के लिए वारकरियों का सागर उमड़ पड़ा था । रामचंद्र अकेला था, उस भीड़-भाड़ में उसका कोई ठिकाना नहीं था, न

भीड़ को पार करने की हिम्मत। भगवान् के दर्शन कैसे होते? वह घबराकर रोने लगा। अकेले आने का उसे पछतावा होने लगा। आँखों से आँसू उमड़ पड़े। सभी लोग भगवान् के दर्शन करने दौड़ रहे थे। उस अनजान बालक को कौन देखता?

इतने में घुटनों तक धोती पहना, काले रंग का और सिर पर गमछा लपेटा एक कद्दावर आदमी उसके पास आया। उसने प्यार से रामचंद्र से पूछा कि, "बेटे, रोते क्यों हो?" उसने कहा, "मुझे भगवान् के दर्शन चाहिए।" सुनते ही उस आदमी ने उस भीड़ की परवाह न करते उसका हाथ पकड़कर घसीटते हुए ले जाकर भगवान् के चरणों में उसका माथा रखवाया और भगवान् के गले की माला उसके गले में पहना दी। फिर बाहर खुले में लाकर उसे बताया कि, "तुम्हें भगवान् विट्ठल के दर्शन हो गए। मैं तुम्हारा बड़वा (पुरोहित) हूँ। मेरा नाम विट्ठल बड़वा। तुम दूसरे देवताओं के दर्शन कर के मुझसे मिलना। मैं दक्षिण-द्वार पर हूँ।" रामचंद्र देवताओं के दर्शन कर के बाहर आया, तब खोजने पर वह बड़वा नहीं मिला। उसकी बात सुनकर एक वारकरी बोला, "बड़े भाग्यवान हो बेटे, तुम्हें स्वयं विट्ठल भगवान ने दर्शन दिए हैं।" वह रामचंद्र को अपने निवास पर ले गया। उसे आठ दिन अपने पास बड़े प्यार से रखा और कपड़े-पैसे देकर पहचान के यात्री के साथ बड़े प्रेम से पुणे लौटा दिया। रामचंद्र की पंढरपुर वारी सफल हो गई।

भगवती की कृपा

रामचंद्र को लग रहा था कि पुणे में रहकर अपनी अँग्रेजी पढ़ाई नहीं हो रही, इसलिए किसी अच्छे स्थान जाकर हाईस्कूल की पढ़ाई करे। एक साथी के साथ वह जैसे-तैसे धुलिया पहुँच गया। लेकिन वहाँ हाईस्कूल में दाखिले की बात बनी नहीं। आखिर हारकर वे दोनों लौटने लगे। लौटते समय उन्होंने नासिक के पास वणी की भगवती सप्तशृंगी के दर्शन करने की सोची। सप्तशृंगी देवी ऊँचे पहाड़ पर बसी है। वे दोनों वहाँ पहुँचे। देवी ने स्वप्न में प्रकट होकर बताया कि "अपने इस दोस्त का साथ छोड़ दो। तुम लौट जाओ। तुम्हें किसी बात की कमी नहीं।" भगवती ने उसके दोस्त को डराकर लौटने के लिए मजबूर किया।

रामचंद्र वहाँ कुछ दिन एक संन्यासी के पास रहा। भगवती सप्तशृंगी देवी की मूर्ति आदमकद और अष्टभुजा है। उसका रूप उग्र है और वह बड़ा जाग्रत देवस्थान माना जाता है। पूजा के बाद उसके मुख में केसर-कस्तुरी आदि तेरह द्रव्यों से युक्त बीड़ा बनाकर रखा जाता है। एक दिन रामचंद्र देवी के सामने हाथ जोड़कर खड़ा था कि कभी भी नीचे न गिरनेवाला बीड़ा उसके हाथ में गिरा। पुजारी और भक्त-जन चकित हो गए। उन्होंने कहा, "तुम बड़े भाग्यशाली हो। देवी ने तुम्हें यह कृपा-प्रसाद दिया है।" रामचंद्र ने बड़े भक्ति-भाव से प्रसाद ग्रहण किया।

* * *

श्रीरामानंद उवाच

सत्त्वगुण के कारण मिलनेवाले सुख और तमोगुण के कारण मिलनेवाले सुख में कोई भेद नहीं है। शराब के नशे में डूबे आदमी में और गहरी नींद में सोए आदमी में कोई फर्क नहीं, लेकिन पहले में अज्ञान और दूसरे में ज्ञान है। उसमें जमीं-आसमाँ का फर्क है। तमोगुण अज्ञान में परिणत होता है, तो सत्त्वगुण ज्ञान में। तमोगुण अध:पतन को ले जाता है, तो सत्त्वगुण मोक्ष के द्वार की ओर बढ़ाता है।

३. व्यवसाय और गृहस्थी

घर-गृहस्थी

बलवंतराव बीडकर के निधन के बाद बड़े बेटे बापू ने गृह-त्याग किया था। रामचंद्र छोटा था। गंगूबाई ने बड़ी हिम्मत के साथ घर सँभाला था। उसने रामचंद्र की पढ़ाई पूरी करने की कोशिश की, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली थी। बलवंतराव के दोस्तों ने अपने घर में रामचंद्र को रखकर उसे पढ़ाने की कोशिश की लेकिन उसका ध्यान पढाई में नहीं था। अंत में घर लौट आया और अपनी हिम्मत से कोई काम कर के माँ की मदद करने लगा था। कुछ वर्षों में उसने गंधी का काम सीखकर अपना व्यवसाय शुरु किया। पुरानी चीज़ों के लेन-देन का काम शुरु था।

रामचंद्र अब गंधी और सराफ बना

पुणे लौटने पर रामचंद्र घर की जिम्मेदारी सँभालने की कोशिश करने लगा। वह अँग्रेजी नहीं जानता था, इसलिए बड़ी नौकरी पाना मुश्किल था। प्रारंभ में अदालत में उम्मीदवारी के काम करने लगा। दिन में रुपया भर मिल जाता था, लेकिन इससे वह संतुष्ट नहीं था, इसलिए उसने वह काम छोड़ दिया। वह कौड़ियाँ बेचने लगा, बाद में रेज़गारी बेचने लगा। सोना-चाँदी को भी परखने लगा। पास में पूँजी न होने से ज़्यादा पैसा नहीं मिलता था। आखिर वह एक गंधी की दूकान में नौकरी करने लगा।

दिनभर दूकान में काम करते हुए रामचंद्र ने सुगंधी सामान की अच्छी जानकारी प्राप्त की। कुछ ही दिनों में उसने जान लिया कि कच्चा माल कहाँ से खरीदें, भट्टी कैसे लगाएँ, यंत्र लगाकर इत्र कैसे बनाए जाएँ। कारोबार वही देख लेता था, दूकानदार को कुछ भी देखना न पड़ता था। वह खुश होकर उसे इनाम भी देता था।

इतनी कुशलता प्राप्त करने पर वह नौकरी छोड़कर खुद सुगंधी सामान बनाने लगा। वह अपना माल बेचने के लिए कल्याण, ठाणे और मुंबई जाने लगा। आकर्षक व्यक्तित्व और मीठी जुबान से लोग उसे पसंद करने लगे। वह देशी और विदेशी इत्रों को मिलाकर ऐसे बढ़िया इत्र बनाने लगा कि बड़े-बड़े साहब लोग उसका माल खरीदने लगे। अच्छा पैसा मिलने लगा। रामचंद्र अब गंधी के नाम से पहचाना जाने लगा।

इत्रों के व्यापार में अच्छा पैसा कमाने पर वह पुरानी चीजों के लेन-देन में भी उतरा। उसमें भी कामयाबी मिलने लगी।

खुदा देता है छप्पर फाड़कर

रामचंद्र को पुरानी चीजों के लेन-देन में दिलचस्पी थी। एक दिन शहर में घूमते हुए उसने देखा कि पेशवाई के ज़माने की एक कोठी पर पुराने बर्तनों की निलामी हो रही हैं। बर्तन काले पड़े थे, लेकिन नक्काशीदार थे। तीस बर्तन थे। रामचंद्र ने आगे बढ़कर डेढ़ सौ रूपयों में उन्हें खरीद लिया।

घर लाकर वह उन्हें ऊपर रखने लगा तो एक दीवट नीचे गिरी, और टेढ़ी-मेढ़ी हो गई। पीतल की होती तो टूट जाती। रामचंद्र ने उत्सुकता से साफ कर के देखा तो वह सोने की निकली। और ग़ौर से देखा तो दीवट की खोलों में कुछ भरा होने का एहसास हुआ। खोलकर देखा तो बेशकीमती रत्न निकल पड़े। खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर। पलक झपकते ही रामचंद्र मालामाल हो गया। वह अब रामभाऊ सराफ या भाऊसाहब गांधी भाऊसाहब बीडकर कहलाने लगा।

अपार धन मिला, लेकिन भाऊसाहब ने गंधी का धंधा चालू रखा। अब वे माल बनवा लेते थे। सराफे की दूकान नहीं थी, लेकिन सराफे में उनका आदर था। वे बड़े रत्न-पारखी थे। बाजार में रत्नों के कारोबार में उनकी सलाह ली जाती थीं। फिर भी वे इत्र और सुगंधित द्रव्यों को लेकर व्यापार के लिए दूर-दूर तक जाते थे। रईस, राजा और बड़े बड़े अँग्रेज अफसर उनके खरीदार थे। वे प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे ही। तिसपर ऊँची पोशाक और बोलचाल में चतुराई के कारण वे जहाँ भी जाते थे, वहाँ उनका स्वागत होता था और मुँहमाँगे

दाम मिलते थे।

अब माता गंगूबाई ने उनका विवाह इक्कीस की उमर में केडगाँव के रामजी पाटील की कन्या रंगूबाई के साथ कर दिया। आगे चलकर उसके एक कन्या हुई थी। योग्य समयपर उनका विवाह रोवर के राजे रघूनाथराव देशमुख के साथ हुवा।

श्रीबीडकर महाराज को माँ के प्रति बड़ा प्रेम था। वे माता का वचन नहीं तोड़ते थे। घर के हालात अच्छे होने पर उनके घर में कई रिश्तेदारों ने आश्रय पाया। भरा-पूरा घर देखकर श्रीमहाराज को अच्छा लगता था। वे घर के सभी लोगों का खयाल रखते थे। जब भी बाहर के गाँव जाते थे, तो वहाँ से अच्छी अच्छी चीजें लाकर सब में बाँट देते थे। दूसरों को देने-खिलाने में उन्हें बड़ा संतोष मिलता था।

कुछ वर्षों बाद श्रीबीडकर महाराज अपने बड़े भाई बापू को बडोदरा से ढूँढकर घर लाए। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह फिर घर छोड़कर लापता हो गया।

* * *

श्रीरामानंद उवाच

पेट भरने तक अन्न और अच्छी संगति मिले जाए तो मान लो कि आधा काम बन गया। सौभाग्य से तुम्हें भगवान् की संगति मिल गई है। उनकी सेवा मन से करोगे तो वे तुम्हें कमी महसूस होने नहीं देंगे। भगवान् अपने मन में होते हैं। जब मन विकारों से मलिन पड़ जाता है, तब वे दिखाई नहीं देते। दुनिया आदान-प्रदान पर चलती है। तुम दूसरों का बुरा चाहोगे तो पल्ले बुराई आएगी। इस दुनिया में जो थोड़ी-सी ईश्वर सेवा बन सकेगी, उसे मन से करोगे तो वह श्रेष्ठ है। भगवान् भाव का भूखा है।

४. माया महाठगिनी

विलासिता

भाऊसाहब रईसों में गिने जाने लगे। उन्हें लक्ष्मी का वरदहस्त मिल गया था। गंधी का व्यापार अच्छा चल रहा था। बड़े तबके के लोगों से साबका पड़ता था। ऊँचे लोगों की सोहबत थी और बड़ी दौलत भी मिली थी। इज़्ज़त-शोहरत थी। जवानी थी। धीरे धीरे वे ऐश मनाने लगे। एक तवायफ के मोह-जाल में फँस गए। शबाब में बहाया जाता धन रीता होता गया। माता सब जानती थी लेकिन समझदार बेटे को क्या और कैसे समझाती?

भाऊसाहब के कुछ अच्छे-दोस्तों ने उनको समझा-बुझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन सिर पर चढ़ा हुआ नशा किसीकी नहीं सुनता। लोग उनसे किनारा करने लगे। वे बेआबरू होने लगे। समाज में शर्मिंदगी महसूस होने लगी। व्यापार भी ठप होने लगा। धन-जोबन का गर्व उतरने पर होश आया। ठगिनी माया न जाने क्या-क्या खेल नचाती है। भाऊसाहब ने सोचा कि पुरखों की सरदारी-मनसबदारी के बहाने राजा-महाराजाओं से मिलें। जगह-जगह साधु-संत और फकीर-औलियों से मिलकर किमिया पाने की कोशिश करें, जिससे पैसों की कमी दूर हो सके। वे नए सिरे से उबरने की कोशिश करने लगे।

वडोदरा का सफर

भाऊसाहब बीडकर सुगंधी द्रव्य बनाकर सब से पहले वडोदरा पहुँचे। वहाँ के महाराजा गायकवाड से वे मिलना चाहते थे। उन्होंने शहर में घूमकर कुछ माल बेचा। महाराजा से मिलने की इजाज़त पाने के लिए वे रियासत के बड़े-बड़े सरदारों से मिले, लेकिन भेंट मिलने की कोई उम्मीद दिखाई नहीं दी। वे फिक्र में डूब गए। इतनी दूर आकर भी कोई खास कमाई नहीं हुई।

भाऊसाहब जन्मजात बुद्धिमान थे। जब जब भी मुश्किल आ जाती,

तब तब उनका दिमाग तेजी से काम करने लगता था और कोई न कोई सूरत निकल आती थी। उन्होंने सब्जी मंडी में जाकर पता लगाया था कि शहर के लिए रोज कितनी सब्जी आती है। वहाँ रोज १०-१५ रुपये की सब्जी आती थी। भाऊसाहब दलालों से मिले और तीन दिन सब की सब सब्जी खुद खरीद लेने का वादा किया। सब्जी लेकर वे गायों को खिलाने लगे। बाजार में दो दिन सब्जी बिलकुल नहीं मिली। तीसरे दिन शहर में चर्चा होने लगी। बात महाराजा तक पहुँच गई कि कोई परदेसी व्यापारी आया है और सारी सब्जी खरीदकर गायों को खिला देता है।

महाराजा ने खादिम को दौड़ाकर उन्हें बुला लिया। भाऊसाहब बढ़िया पोशाक पहनकर और इत्र लगाकर मिलने गए और उन्होंने महाराज को अदब के साथ झुककर सलाम किया। वे बड़े प्रभावित हो गए। उन्होंने पूछताछ की कि "आप कौन हैं, कहाँ के हैं और सब्जी खरीदकर गायों को क्यों खिलाते हैं?" भाऊसाहब ने उत्तर किया कि, "हम नारो शंकर के वंश के बीड़ के रहनेवाले हैं। महाराज के पुश्तैनी खिदमतगार हैं। यहाँ आकर हुजूर के दर्शन करना चाहते थे, लेकिन किसीसे इजाज़त नहीं मिली, तब यह तरकीब लड़ाई।" महाराज उनकी चतुराई देखकर खुश हो गए। उन्होंने उनके पास का माल खरीदने का वादा किया और पहले दर्जे का सीधा उन्हें देने का हुक्म किया।

वहाँ आराम से महीना भर बीता, लेकिन काम नहीं बन रहा था। आखिर भाऊसाहब महाराजा से दुबारा मिले। उन्होंने गुज़ारिश की कि हमारे पास आपकी रियासत की पुश्तैनी सनद है, इसलिए मनसबदारी मिल जाए।

महाराजा ने कहा कि, "बात बहुत पुरानी हो गई है। वह काम दूसरों को सौंपा है। लेकिन आप चाहते हैं, तो निगरानी का नाम दे सकते हैं। तनख्वाह दो सौ रुपए महीना होगी।"

तब भाऊसाहब ने बताया कि, "सरदार घराने के होकर बनिये का काम करना अच्छा नहीं। आपका हुक्म हो तो तलवारबाज़ी का पुश्तैनी काम मिल जाए। हम करतब दिखाने को तैयार हैं।"

महाराज ने कहा कि, "तलवार बहादुरी के दिन लद गए।" और पाँच

हजार रुपये देकर उन्हें सम्मान के साथ बिदा किया। तब उन्होंने वहाँ ब्राह्मण-भोजन कराया। कुछ खुराफाती लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने एक बदचलन औरत को फुसलाकर भाऊसाहब को बदनाम करने की कोशिश की, लेकिन चतुराई से वे बच निकले।

ग्वालियर का सफर

भाऊसाहब ने पुणे लौटने के बाद ग्वालियर जाने की सोची। उन्होंने साथ में बढ़िया इत्र और सात पल्ले अगरबतियाँ लीं। वहाँ पहुँचने पर ग्वालियर नरेश से मिलने की कोशिश की। एक अजनबी महाराज तक कैसे पहुँच सकता था? उन्होंने सरदारों के और दीवान के यहाँ कई बार चक्कर लगाए, लेकिन कामयाबी नहीं मिली।

तब उन्होंने बडोदरा की तरह एक नई तरकीब सोची। ग्वालियर के राज महल के सामने गोरखी नाम का बड़ा मैदान है। एक रोज़ भाऊसाहब अपने पास की बहुत सारी अगरबतियाँ लेकर मैदान में पहुँचे। उन्होंने कागज ठूँसकर अगरबतियाँ रचीं और जला दीं। सारा मैदान खुशबू से महक उठा। हवा उसे लेकर राजमहल में पहुँची। पूरा राजमहल महकने लगा। पूछताछ हुई, तो पता चला कि कोई परदेसी आकर मैदान में अगरबतियाँ जला रहा है। उसे मना करने का हुक्म हुआ। नौकर ने दौड़कर भाऊसाहब को बताया। उन्होंने कहा, "हम कोई गैरकानूनी काम नहीं कर रहे हैं। अपना माल ही जला रहे हैं।" महाराजा ने जवाब सुनकर उन्हें पेश करने का हुक्म दिया।

भाऊसाहब यही चाहते थे। उन्होंने महाराजा को अदब के साथ सलाम किया। पूछताछ हुई कि कौन हैं, कहाँ के हैं और अगरबतियाँ क्यों जला रहे हैं? तब उन्होंने कहा कि, "हुजूर, आपके दर्शन के लिए यह बहाना बनाया। हम बीड के रहनेवाले हैं और आपके पुश्तैनी खिदमतगार हैं। हमारे पुरखों ने आपसे सनद पाई थी। अर्ज़ करने आए हैं कि वह हमें मिल जाए।'

महाराजा ने सुनवाई तक उन्हें सीधा देने और कचहरी में रोज़ आने का हुक्म दिया। उनका सारा माल खरीदने का वादा भी किया।

ग्वालियर गाने बजाने की कला में मशहूर है। वहाँ भाऊसाहब के दो

महीने आराम से गुजरे। आखिर सरकार का हुक्म हुआ कि बात बहुत पुरानी है। अब सनद के मुताबिक तीन सौ घुड़सवारों का अफसर बनाना नामुमकिन है। आप चाहें तो आपको तहसीलदारी दी जा सकती है। भाऊसाहब ने लिखा-पढ़ी के पचड़े में पड़ने से मना कर दिया। तब पाँच हजार रुपये और एक गहना देकर उन्हें बिदा किया गया।

इससे जलनेवाले कुछ लोगों ने यहाँ भी साज़िश की। उन्होंने भाऊ साहब को दावत पर बुलाया और अफीम खिला दी। नशे की बेहोशी में एक तवायफ उन्हें घर ले गई। महाराजा के पास शिकायत की गई। भाऊसाहब से जवाब तलब किया गया। उन्होंने बता दिया कि, "बदनामी करने के लिए यह साज़िश रची थी। भगवान् की कृपा से हम बच गए। उन्हीं लोगों ने आकर आप से शिकायत की है।" महाराजा को खुश कर के भाऊसाहब ने बिदा ली।

ग्वालियर में एक औरत भाऊसाहब पर आशिक हो गई थी। वहाँ से निकलते समय उसने कहा, "आपसे हम दिल लगा चुके हैं। आपके जाने पर हमारा क्या होगा।" उन्होंने कहा, "तब चलो हमारे साथ।" उसने पूछा, "वहाँ उस परदेस में आप हमसे किनारा कर गए तो? आपके उस मुल्क में आपसे बेसहारा होने पर हमारा क्या होगा?" भाऊसाहब ने उसे यकीन देते हुए कहा कि, "यह हमारी ज़बान है।" अंत में वह उनके साथ पुणे आई। भाऊसाहब ने उसे बाइज़्ज़त घर में रखा। अंत तक उसे अपने साथ रखा और अपना वादा निभाया।

जयपुर में

उत्तर भारत के इस सफर में भाऊसाहब आसपास के प्रदेश देख लेते थे। साधु-संतों से मिल लेते थे। एक बार वे जयपुर गए। वहाँ उनके पुरखों की जायदाद या सनद नहीं थी। लेकिन वहाँ के महाराजा से मिले। उन्होंने पूछा कि "आप कौन ब्राह्मण हैं?" तो इन्होंने तपाक से उत्तर दिया, "पेटिया ब्राह्मण।" इसका मतलब कोई नहीं जान सका। पूछने पर दरबार का नाम जाता, इसलिए उन्हें रोज़ दो रुपए का सीधा देने का हुक्म हुआ। कुछ दिन वहाँ आराम के साथ शहर देखने में बिताए। एक दिन वे बिदा लेने हुजूर में पहुँचे तब महाराजा ने पूछा

कि, "पेटिया ब्राह्मण क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया, "पेटार्थी।" सुनकर सब लोग हँस पड़े। महाराजा ने उनकी हाजिर-जबाबी पर खुश होकर उन्हें सम्मानित कर के बिदा दी।

सातारे का सफर

ऐसे ही एक बार वे सातारा गए थे। वहाँ वे सातारा की तत्कालीन राजमाता माँसाहब से मिले। उन्होंने पूछताछ की कि कौन, कहाँ के हैं? इन्होंने बताया कि, "हम सरदार घराने के ब्राह्मण हैं, आज कल गंधी का धंधा करते हैं।" माँसाहब ने कहा कि "ब्राह्मण होकर क्या ऐसा धंधा करना चाहिए?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाथ से तलवारें निकल गईं, तभी हाथ में बोतलें और कनस्तर आ गए। क्या करें?" माँसाहब ने हँसकर कहा, "अब तो हम राजा नहीं हैं, आपका सम्मान कैसे करें?" तब भाऊसाहब ने उनकी इज़्ज़त करते हुए कहा कि, "हम तो आपको लक्ष्मी का अवतार ही समझते हैं।" राजमाता ने उन्हें शाल-साफा देकर सम्मानित किया और उनसे माल भी खरीदा।

जंजिरे का सफर

भाऊसाहब जंजिरे के सुलतान के दरबार में भी गए थे। वहाँ बहुत-सा माल खरीदा गया। जंजिरे में एक मांत्रिक औरत थी। भाऊसाहब उससे मिले। वह खाली बर्तन से हल्दी या अपने पल्लू से मिसरी निकालकर बाँटती थी। उसने भाऊ साहब को मिसरी निकालकर दे दी। उन्होंने पूछा तो उसने बताया कि मंत्र की शक्ति से ऐसा होता है।

* * *

५. अबलौं नसानी, अब न नसैहौं

परमार्थ के योग्य बनने की प्रतिज्ञा

भाऊसाहब बीडकर जी अनेक स्थानों पर व्यापार के बहाने गए। वहाँ के राजा-महाराजाओं से मिले। ऊँचे लोगों से परिचय हुआ। धन भी काफी मिला, लेकिन नाच-गाने के दौर चलते ही रहे, जिससे गाँठ में कुछ बचता नहीं था। इसलिए पैसे की कमी बनी रहती थी। बहुत पैसा पाने के लिए वे साधु-संतों, फकीरों-औलियों से मिलकर उनकी कृपा पाने की कोशिश करने लगे। कल्याण में उन्हें एक औलिया मिला। उसकी सेवा कर के उन्होंने उससे किमिया हासिल की। किमिया से उन्हें अनगिन पैसा मिला और वह भी उड़ता गया। अकूत पैसा पाने की हवस उन पर सवार गई। काम और दाम की कामना कब तृप्त होती है? वे साधु-संतों के दर्शन करते थे लेकिन उनके उपदेश का उनपर असर नहीं होता था।

एक साधु ने उनकी हालत देखकर सब लोगों के सामने फटकारा कि, "वैराग्य के बिना सब झूठ है। आप ऐशोआराम कीजिए। परमार्थ आपके बस की बात नहीं।" साधु के शब्द भाऊसाहब के मन में चुभ गए। वे बेचैन हो गए। इसी क्षण उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं इनसे परमार्थ के योग्य कहलाऊँगा।

प्रतिज्ञा तो कर बैठे, लेकिन विषयासक्ति अपनी ओर खींच रही थी। उसके चंगुल से बाहर निकलना क्या आसान था? मन में हठपूर्वक विरक्ति ओढ़ने की कोशिश की, किंतु वह व्यर्थ हो जाती थी। इधर प्रतिज्ञा भी व्यर्थ हो रही थी। आसक्ति और विरक्ति के बीच मन तड़पकर रह जाता था। आखिर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा निभाने का दृढ़ निश्चय किया और वे अपने आराध्य महावीर हनुमान की उपासना में दिन रात लग गए। इस उपासना से आत्म-बल जागने लगा। एक दिन उन्हें स्वप्न में हनुमान जी का आदेश हुआ कि "अक्कलकोट स्वामी के दर्शन

करने जाओ।"

गुरु दरसन की प्यास

बड़ी लगन के साथ वे अक्कलकोट चले। श्रीस्वामीजी के दर्शन के लिए मन तड़प रहा था। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने प्रण कर लिया कि, जब तक श्रीस्वामी जी के दर्शन नहीं होंगे, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगा।

लोगों ने कहा कि, "आपका प्रण नहीं निभ पाएगा। श्रीस्वामी जी तो अभी अभी राजमहल में गए हैं और वहाँ जाने पर वे पंद्रह-पंद्रह दिन बाहर नहीं निकलते और उनके दर्शन नहीं होते। यही अच्छा है कि आप प्रण की बात छोड़ दीजिए।" लेकिन श्रीबीडकर जी ने कभी झुकना नहीं जाना था। प्रण निभाना ही होगा। वे अन्न-त्याग कर के सद्‌गुरु को स्मरण करते बैठे रहे।

इधर श्रीस्वामी जी राजमहल में शोर मचाने लगे। चीखने लगे कि, "हमें बंदीखाने में डालते हो? लोगों को तकलीफ उठानी पड़ती है। उन्हें दर्शन नहीं मिलते।" आस-पास के लोगों पर उन्होंने गालियों की बौछार कर दी। लोग उन्हें रोक रहे थे, लेकिन किसीकी न सुनते वे महल की चहारदीवारी से कूदकर बाहर निकले। उनके दर्शन से भक्तों को संतोष हुआ।

सद्‌गुरु मार्‌या बाण

खबर मिलते ही श्रीबीडकर जी स्नान कर के पूजा की सामग्री लेकर श्रीस्वामी के पास पहुँचे। अनेक युगों से सद्‌गुरु के दर्शन के लिए आत्मा तरस रही थी। गद्‌गद होकर पूजा अर्पण कर के उन्होंने श्रीस्वामी जी के चरणों में माथा रखा। श्रीस्वामी जी ने पूछा, "पैरों क्यों पड़ते हो?" उत्तर दिया, "नींव मजबूत होनी चाहिए।" तब उन्होंने उँगली उठाते हुए और खूँटी पर टँगे मृगाजिन को दिखाते हुए कहा, "वह देखो, वह देखो।" श्रीबीडकर जी ने विनम्र भाव से पूछा कि "अनजान हूँ।" बस, तब क्या था। गालियों की बौछार होने लगी। आस पास के लोग घबरा गए। ऐसा लगा कि अब गाज़ गिरेगी। वहाँ श्रीस्वामी जी के शिष्य चोलाप्पा और सुंदराबाई बैठे थे। श्रीबीडकर जी का हाथ पकड़कर उन्होंने उन्हें सामने से हटाते हुए कहा, "आप गृहस्थ हैं। श्रीस्वामी महाराज का क्रोध बरसेगा, तो अनर्थ हो जाएगा।" लेकिन वे श्रीस्वामी जी के सामने से न हटते

हुए डटकर खड़े रहे। आखिर स्वामी ठंड़े पड़ गए। उन्होंने कहा, “अब यहाँ से चले जाओ। तुम्हारा काम बन गया।” उनका कृपा-प्रसाद पाकर वे पुणे लौट आए।

सद्गुरु श्रीस्वामी समर्थ जी ने निशाना साध कर बाण मारा था। अब श्री रामभाऊ गंधी या श्री रामचंद्र बीडकर अपने आप में नहीं रहे। वे गुरु-भक्ति के कारण पगला गए। वाणी मौन हो गई। कान सांसारिक बातें सुनने योग्य नहीं रहे। उनके कान अब दुनिया की बातें सुनने के लिए नहीं थे। इधर उधर भटकनेवाले पैर रुक गए। ज़बान पर श्रीसद्गुरुराई-माई का जप निरंतर चलने लगा। एक साल जप में डूबे रहने पर माघी पौर्णिमा के दिन सद्गुरु के दर्शन के लिए वे अक्कलकोट पहुँचे। उन्हें देखने पर श्रीस्वामी जी ने कहा कि, “आम गदरा गया है। पकेगा तो काम पूरा हो जाएगा।” सद्गुरु से आज्ञा पाकर वे लौट आए और गुरु-स्मरण में खो गए।

एक साल बाद अगली माघी पौर्णिमा के दिन वे अक्कलकोट पहुँचे। इस बार उन्होंने गुरु का उपदेश पाने तक वहीं सेवा करने की ठानी थी। वे रात में गुरु के पैरों को दबाते थे। एक रात अचानक श्रीस्वामी जी के घुटनों के बीच से एक भयानक नाग फुफकार मारते निकला। श्रीरामचंद्र बीडकर जी ने अपने को सद्गुरु के चरणों में सौंपा था। सद्गुरु तारे या मारे। उन्होंने श्रीस्वामी जी के पैर नहीं छोड़े। तब वे उठ बैठे और झल्ला कर बोले, “तू बड़ा राक्षस है, जिन्न है।” श्रीबीडकर जी को एक क्षण लगा कि सद्गुरु कहीं शाप तो नहीं देंगे। इतने में उन्होंने गुस्से में कहा कि, “जिन्न, राक्षस, निकल जा यहाँ से।” और उन्होंने उनके मुँह पर एक तमाचा जड़ाया। तमाचा पाकर श्रीबीडकर जी सुध-बुध खोकर गिर पड़े। किसीने उन्हें अलग कमरे में लेकर जाकर सुला दिया।

सुबह वे जागे तो आनंद में डूबते-उतरते थे। सद्गुरु का तमाचा खाते ही अहंता मर गई थी। अब पहले के श्रीबीडकर जी नहीं रहे। उनका नया जन्म हुआ। वे श्रीस्वामी जी के दर्शन करने पहुँचे तो बोले, “अब तेरे बाप का लेना-देना क्या बचा है? जाओ, सेवा बनाओ।” श्रीस्वामी जी ने सहस्र भोजन का आयोजन करने की आज्ञा दी।

आगे-पीछे गुरु खड़ै

गुरु की सहस्र भोजन की आज्ञा कैसे पूर्ण हो? गाँठ में इतने पैसे नहीं थे। वे साथ में इत्र तो लाए थे, लेकिन अक्कलकोट रोड स्टेशन से घोड़े पर सवार होकर आ रहे थे कि बीच में घोड़ा बिदक गया और इत्र का संदूक नीचे गिरकर शीशियाँ टूट गई थीं। अब क्या करें?

उन्होंने अक्कलकोट के राजा के दीवानसाहब की पहचान पर एक व्यापारी से माल उधार लिया और सहस्र भोजन कराया। सब को चार-चार आने की दक्षिणा भी दी। श्रीस्वामी महाराज जी ने कहा कि, “हमें भोजन तो खिलाया, दच्छिना नहीं दी। बच्चा, दच्छीना देगा, बहुत देगा।” श्रीबीडकर महाराज ने सोचा कि श्रीस्वामी जी दक्षिणा में बड़ी रकम माँगेगे। कोई बात नहीं। उन्होंने कहा कि, “आपकी आज्ञा सिर आँखों पर।” लेकिन श्रीस्वामी जी ने नहीं माना। वे बोले, “अब झूठ क्यों बोलते हो? तुमसे दच्छिना नहीं दी जाएगी। वचन दे दो।” श्रीबीडकर महाराज ने उनके हाथ पर हाथ रखकर तीन बार वचन दिया, तब श्रीस्वामी समर्थ महाराज ने कहा, “तुम जो जड़ी-बूटियों की किमिया (सोना बनाने की कला) करते हो, वह आज से बंद। आगे नहीं करोगे। यही हमारी गुरु-दच्छिना है।”

किमिया से जिंदगी आराम से कट रही थी। वही बड़ा सहारा थी। वही बंद हो जाए, तो क्या होगा? दूसरा कोई होता तो हिचकिचा जाता, लेकिन श्रीबीडकर महाराज जी की गुरु-निष्ठा अटल थी। उन्होंने बिना सोचे-बिचारे कह दिया कि, “आपकी आज्ञा सिर आँखों पर।” उन्होंने आगे कहा कि, “मैं खुद नहीं करूँगा, अपने शिष्य को इसके लिए तैयार करूँगा।” श्रीस्वामी जी ने कह दिया, “बन सके तो बना दो।” श्रीबीडकर महाराज ने कहा कि, ‘मैं परमार्थ विद्या भी दूसरों को बताऊँगा।” श्रीस्वामी जी ने कहा कि, “राम्या, भूखे को खिलाओ, नहीं तो अन्न का सत्यानाश होगा।” तिसपर श्रीबीडकर महाराज ने कहा, “भूखे को कोई भी खिलाएगा।”

अनुग्रह पूरा हो गया था, अब अक्कलकोट में उधार से निपटना था। किमिया को गुरु-चरणों में अर्पण किया गया था। पैसा कहाँ से आए? संयोग था

कि राजमहल में अष्टगंध की ज़रूरत थी। श्रीस्वामी जी जब राजमहल में जाते थे तब उनके शरीर पर अष्टगंधादि मलकर उन्हें नहलाया जाता था, लेकिन वही खत्म हो गया था। दीवान ने राज साहब को श्रीबीडकर महाराज का नाम सुझाया। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि, "कस्तुरी नहीं है। वह मिल जाए तो बना दूँगा।" कस्तुरी का इन्तजाम कर दिया गया। तब श्रीबीडकर महाराज ने टूटी-फूटी शीशियोंमें से फाहे के सहारे बचे हुए इत्र की बूँदें निकालकर उनको मिलाया और ऐसा बढ़िया अष्टगंध बनाया कि राजासाहब को पसंद आया। मनचाहे दाम मिल गए। उधार अदा कर के राह-खर्च भी निकल आया। गुरु के चरणों में अपने को सौंपने पर वही सब कुछ निभा लेता है। तब फिक्र कहाँ?

श्रीस्वामी समर्थ जी की कृपा के बाद श्रीबीडकर महाराज पुणे लौट आए। सद्गुरु-स्मरण के सिवा उन्हें चैन नहीं आता था। अब उन्हें संसार के प्रति उदासीनता हो गई थी। आसक्ति छूट गई थी, मन में विरक्ति छा गई थी। इस बीच माता जी का स्वर्गवास हुआ। लापता भाई की मृत्यु की खबर मिली। बहनें गुज़र चुकी थीं। ममता के बंधन एक एक कर टूट रहे थे। लेकिन अभी कर्तव्य निभाने थे। ग्वालियरवाली औरत से आखिरी साँस तक साथ निभाने का वादा किया था। लेकिन भगवान ने श्रीमहाराज को इस धर्म-संकट से मुक्त किया। जल्द ही वह परलोक सिधारी। श्रीमहाराज के मन का बोझ उतरा।

वे दुनियादारी से उदासीन हो चले थे। लोग उनका मज़ाक उड़ाते थे कि भाऊसाहब पगला गए हैं। गुरु का मारा पगला कैसे न बन जाता? कुछ लोग तीखा व्यंग करते थे कि सौ चूहे खाय के बिल्ली चली हज़ को। लेकिन श्रीमहाराज को न स्तुति से खुशी थी, न निंदा से तकलीफ। एक सद्गुरु ही अब उनका तारनहार था। कुछ दिनों बाद वे गुरु-दर्शन के लिए अक्कलकोट गए, तो श्रीस्वामी जी ने कह दिया, "अब दुबारा यहाँ मत आओ। नर्मदा-परिक्रमा करो।"

श्रीमहाराज ने शिष्य के द्वारा किमिया करने की कोशिश की, लेकिन कामयाबी नहीं मिली। तब उन्होंने उसका खयाल छोड़ दिया। आमदनी का ज़रिया चला गया। घर में जो सगे-संबंधी थे, वे भी तंगी के कारण दूर होते गए। अब घर में दो ही जने थे-स्वयं श्रीमहाराज और धर्मपत्नी सौभाग्यवती जानकीबाई

माँसाहब। श्रीमहाराज के मन में एक ही बात थी। गुरु-आज्ञा के अनुसार नर्मदा-परिक्रमा करनी थी। बिना किसी को बताए, अकेले नि:संग बनकर। मौका देख रहे थे।

लड़की गर्भवती थी। उसकी प्रसूति की सेवा-टहल के लिए रावेरी से दामाद जी का बुलावा आ गया। सौ. जानकी माँसाहब वहाँ जाकर तीन महीने रहनेवाली थी। श्रीमहाराज ने उन्हें पहुँचाने के बहाने रावेरी जाकर वहीं से चुपचाप परिक्रमा के लिए जाने की सोची। उन्होंने माँ साहब को रावेरी पहुँचाया। पुणे हो आता हूँ, कहकर वे रावेरी स्टेशन पर पहुँच गए, लेकिन गाड़ी पर सवार न होकर ओंकारेश्वर मांधाता की ओर पैदल चल निकले। ओंकारेश्वर से ही परिक्रमा के लिए निकलने की उन्होंने सोची थी।

उन्होंने संकल्प कर लिया था कि अबलौं नसानी, अब न नसैहौं। आज तक का जीवन बरबाद हो गया, अब मैं उसे बरबाद होने नहीं दूँगा। चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए।

* * *

श्रीरामानंद उवाच

धन के लिए साधन करना बुरा है। सिद्धियाँ वारांगना की तरह होती हैं। वे क्षणिक सुख देकर चली जाएँगी। पुण्य-क्षेत्र में रहकर ऐसे बुरे कर्म करने में आत्मनाश है। मंत्र-सिद्धि कमाई जाती है, जब की योग-सिद्धि भगवान् की कृपा से प्राप्त होती है।

६. ई सभ अकथ कहानी

नर्मदा-परिक्रमा

श्रीबीडकर महाराज नर्मदा-तट पर ओंकारेश्वर पहुँचे। यहाँ एक सत्प्रवृत्त ब्रह्मचारी रहते थे । उनके आश्रम में श्रीमहाराज उतरे। उन्होंने नर्मदा-परिक्रमा का अपना संकल्प उन्हें बताया। अपने पास के कपड़े, जूते आदि चीजें उनको सौंपकर कहा कि, "अगर हम ज़िंदा लौटें तो ये चीजें हमें लौटा देना।" ब्रह्मचारी जी ने उन्हें नर्मदा-परिक्रमा के नियम बताए कि नर्मदा का तीर छोड़कर नहीं चलना चाहिए और दिन में कम से कम एक बार नर्मदा का जल पीना चाहिए । उन्होंने यह भी बताया कि "राह में टीले पर एक गुसाईं रहता है । वह किसीको भी सहारा नहीं देता। आगे चलकर पत्थरगीर गुसाईं का बड़ा मठ है। वह बड़ा घमंडी है और ब्राह्मणों का जनेऊ तोड़कर उन्हें ज़लील करता है । इसलिए उसके पास मत जाना चाहिए ।" श्रीमहाराज उससे बिदा लेकर नंगे पाँव चल पड़े । उनके पास पहनने के लिए एक तंग धोती और एक गमछा, दो ही चीजें थीं ।

टीलेवाला गुसाईं

यद्यपि ब्रह्मचारी स्वामी ने श्रीबीडकर महाराज को टीले पर रहनेवाले गुसाईं से और पत्थरगीर गुसाईं से दूर रहने को कहा था, लेकिन श्रीमहाराज देखना चाहते थे कि कौन कितने पानी में है । इसलिए समझ-बूझ के साथ टीलेवाले गुसाईं की पर्णकुटि पर वे पहुँच गए । कहीं कोई नहीं था । वे ज़ोर ज़ोर से पुकारने लगे, तब वह गुसाईं गुस्से में भरकर गालियों की बौछार करते हुए चिमटा लेकर मारने निकला । उसकी नींद में खलल पड़ा था, इसलिए वह भला-बुरा बक रहा था । श्रीमहाराज चुपचाप खड़े थे। गुसाईं आपे से बाहर हो गया और उसने उन्हें निकल जाने को कहा।

तब श्रीमहाराज ने विनम्रता से कहा कि "मैं ब्रह्मप्राप्ति के लिए परिक्रमा

कर रहा हूँ। आप जैसा कोई गुरु मिल जाए तो चेला बनने के लिए तैयार हूँ।" तब वह बोला, "चेला बनना है, तो बातें बनाने से काम नहीं । तन-मन-धन सब कुछ गुरु को अर्पण करना पड़ेगा, गुरु की सेवा करनी पड़ेगी, बहुत जनमों का वह काम है ।" फिर वह श्रीमहाराज को डराने के लिए उपदेश की बड़ी बड़ी बातें बताने लगा । लेकिन वे टस से मस नहीं हुए । उन्होंने सेवा करने की इच्छा जाहिर की। दुपहर की धूप चिलचिला रही थी । गुसाईं ने श्रीमहाराज के खाने-पीने की कोई फिक्र न करते हुए एक बड़ा-सा घड़ा लाकर उनके सामने रख दिया और नर्मदा का पानी लाने की आज्ञा की। श्रीमहाराज दृढ़ निश्चयी और ज़बान के पक्के थे । वे दो दिन के भूखे-प्यासे थे । उन्होंने आव न देखा ताव । घड़ा उठाकर नदी पर चले। उस दुपहर में तपी हुई रेत में उनके पैर जलने लगे । दौड़कर वे पानी के पास पहुँचे और उसमें कूद पड़े । नहाकर पानी पी लिया, वे तरोताज़ा हो गए। पानी भरकर घड़ा कंधे पर रखा । लौटने लगे तो पैर रेत में फँस रहे थे और जल रहे थे । लेकिन सद्गुरु का स्मरण करते हुए वे जैसे तैसे तेजी से लौटने लगे। उन्हें कमजोरी और जलन के कारण चक्कर आ गया और घड़ा नीचे गिरकर टूट गया । फिर भी धीरज बाँधकर वे सद्गुरु का स्मरण करते हुए एक पेड़ के नीचे जा बैठे।

इधर उस गुसाईं की नित्य-पूजा में जो गोपाल कृष्ण की मूर्ति थी वह काँपने लगी । उसे देखकर गुसाई घबरा गया । मूर्ति से आवाज निकली कि "मुझे पानी लाने को कहते हो क्या?" अपने आराध्य स्वयं गोपाल कृष्ण की बात सुनकर वह पछताने लगा और उनसे क्षमा-याचना करते हुए श्रीमहाराज को ढूँढने के लिए दौड़ा । उस गुसाईं को दौड़ते हुए आते देखकर वे सकपका गए कि अब बिगड़ैल गुसाईं न जाने क्या जुल्म ढाएगा । इसलिए वे सद्गुरु का नाम-स्मरण करते हुए बैठे रहे। गुसाईं ने आते ही श्रीमहाराज के पैर पकड़े और क्षमा माँगी। उसने सारी बातें उन्हें बताईं और वह उन्हें लेकर अपनी कुटिया में आ गया ।

श्रीमहाराज को कुटिया में लाने पर गुसाईं ने उनके खाने-पीने का प्रबंध किया और उनका शिष्य बनकर उनकी सेवा करने लगा । वह गुसाईं कोई दुष्ट नहीं था। वह भगवान् का परम भक्त था । वह रात में पैरों में घुँगर बाँधकर बड़े प्रेम

से भगवान् के सामने नाचता था कि गोपाल कृष्ण की मूर्ति भी बड़ी बनकर उसकी ओर देखते-मुस्कुराते हुए नाच उठती थी। बड़ी रात तक वह अपने आराध्य को रिझाने के लिए नाचता था इसलिए उसे दिन में नींद आती थी और यह रहस्य किसीको मालूम न हो इसलिए वह किसीको भी अपने पास ठहरने नहीं देता था। कोई आए तो उसे गालियाँ देकर भगा देता था।

उसका भगवत्प्रेम देखकर श्रीमहाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने चार पाँच दिन वहाँ रहकर उसे ध्यान-योग का ज्ञान दिया। सगुण-निर्गुण का अभेद समझाया और प्राणिमात्र के प्रति दया रखना, अतिथि-सत्कार करना आदि बातों का उसे उपदेश देकर उससे बिदा ली। गुसाईं भी उनका भक्त बन गया।

पत्थरगीर बाबा

श्रीबीडकर महाराज अकेले परिक्रमा करते थे, दूसरे परिक्रमवालों के साथ चलना उन्हें पसंद नहीं था। उनमें वे राघव चैतन्य के नाम से जाने जाते थे। उनकी कीर्ति पत्थरगीर बाबा ने सुनी। वह योगी था, लेकिन अभी उसे पूर्णावस्था नहीं प्राप्त हुई थी। वह अपने गुरु की समाधि-स्थली पर बड़े ठाठबाट से रहता था। उसके सद्गुरु पूर्ण योगी थे। वे समाधिस्थ हुए थे। उन्होंने बाबा को बताया था कि मेरी समाधि में बैठकर जो समाधि लगाएगा उसे तुम मुझ-जैसा योगी समझो। बाबा जी ने अपने गुरु की संगमरमर की समाधि बनाई थी और उसकी पूजा के लिए ब्राह्मण को रखा था।

उसे गाँजा पीने का बड़ा शौक था। उसकी चिलम बहुत बड़ी थी। वह चिलम लेकर ऐसा कश लगाता था कि बड़ा शोला उठता था। किसी आए हुए को वह चिलम देकर उसकी फज़िहत का मज़ा उठाता था। चिलम पीने पर ऐरे गैरे की नशे में दुर्गति हो जाती थी। वह ब्राह्मणों को हेय समझता था और उनके नशे में धुत् होने पर उनका जनेऊ तोड़ डालता था। श्रीमहाराज के आने पर बाबा ने उनकी फजिहत करने की ठानी और शिष्य से चिलम बनाकर उनके हाथ थाम दी। श्रीमहाराज यात्रा के कारण कमज़ोर पड़ गए थे, लेकिन उन्होंने डगमगाए बिना चिलम उठा ली और सद्गुरु का स्मरण करते हुए ज़ोरदार कश लगाया तो चिलम से शोला उठा। उसे देखकर बाबा ने शाबाशी दी और उन्हें अपने झूले पर बिठा लिया। आदर दिया।

श्रीमहाराज ने दो-चार दिन वहाँ रहकर देखा कि पत्थरगीर बाबा मठ, शिष्य, ऐशोआराम और अहंकार के मायाजाल में डूब गया है। योगी होते हुए भी भोगी बन गया है। उन्होंने उसके गुरु के समाधि-मंदिर में खुद समाधि लगाने की सोची। उन्होंने ब्राह्मण पुजारी को बता दिया, लेकिन बाबा के डर से वह घबड़ा गया। श्रीमहाराज ने समझा-बुझाकर समाधि के स्थान में प्रवेश किया और वे समाधि लगाकर बैठ गए। किसीको पता नहीं चला। श्रीमहाराज के दिखाई न देने से पत्थरगीर बाबा बेचैन हो गया। श्रीमहाराज के साथ खाने-पीने और चिलम पीने में उसे मज़ा आता था। दूसरे दिन बाबा के सपने में आकर श्रीमहाराज ने कहा कि मैं समाधि-मंदिर में समाधि लगाकर बैठा हूँ। बाबा जी ने समाधि-मंदिर का द्वार खोलकर देखा तो श्रीमहाराज समाधि में डूबे थे। उन्हें देखकर बाबा जी को परमानंद हुआ। उसके गुरु ने कहा था कि मेरी समाधि में जो समाधि लगाकर बैठेगा, उसे तुम मुझ-जैसा समझो। बाबा जी को स्वयं अपने सद्गुरु को पाने का आनंद हुआ। उसका सारा अहंकार गल गया और वह उनके चरणों में लोट गया।

बाबा जी ने बड़े आदर से श्रीमहाराज को अपने यहाँ रख लिया। उसने योग-मार्ग के बारे में अपनी कठिनाइयाँ बताईं। श्रीमहाराज ने उनका समाधान किया। उन्होंने बताया कि, "तपस्या से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, लेकिन वे योगी को भरमाती हैं और ठगाती हैं। मन की आसक्ति छूटे बिना योग की सिद्धि नहीं होती। तुम अहंकार छोड़कर स्वरूप का अनुसंधान करो।" बाबा जी को सच्चे योगी से उपदेश पाने का बड़ा आनंद हुआ। अपने किए पर उसे पछतावा होने लगा। श्रीमहाराज ने समाधि की पूजा करनेवाले ब्राह्मण शिष्य को भी उपदेश किया कि यहाँ न उलझकर ध्यान-मार्ग को अपनाओ। फिर वे परिक्रमा के लिए आगे बढ़े।

सद्गुरु के दर्शन

श्रीमहाराज कभी परिक्रमा करनेवाले लोगों के साथ हो लेते थे, तो कभी अकेले निकल पड़ते थे। एक बार दूसरे लोगों का साथ छोड़कर वे अकेले चल निकले। आठ दिन कुछ न खाया था। वे घने जंगल से गुज़रने लगे। सूरज डूब

गया और अँधेरा उतरने लगा तब उन्हें भान हुआ कि सामने की कगार टूटी हुई है और कोई चालीस फीट नीचे एक छोटी-सी नदी आकर नर्मदा में मिल रही है। इधर उधर देखा तो घनी झाड़ी थी। आगे या पीछे जाने का कोई रास्ता नहीं था। डरावना अँधेरा गहरा रहा था। कोई चारा नहीं था। रात के अँधेरे में खूँख्वार दरिंदे बाहर निकलेंगे। कहीं उनका शिकार बनना तो नहीं पड़ेगा ? सद्‌गुरु का स्मरण कर के श्रीमहाराज ने वहाँ की बड़ी शिला साफ की। अचानक सफाई करते समय लोहे का एक टुकड़ा मिल गया। इसे सद्‌गुरु की कृपा समझकर उन्होंने उन्हें प्रणिपात किया। उस टुकड़े को पत्थर पर घिसकर साफ किया और चकमक के सहारे चिनगारी निकालकर आग जलाई। गरमाहट पाकर अच्छा लगा। उस धुनी के पास बैठकर वे ध्यान में डूब गए। आधी रात में जब सुध आई तो लगा कि धुनी के उस पार कोई बैठा है। घास-फूस डालकर आग सुलगाई तो देखा कि सामने एक कद्दावर शेर बैठा है। नज़र आते ही श्रीमहाराज को काटो तो खून नहीं। उन्होंने क्षणभर में अपने को सँभाला। बिना डगमगाए पवन स्थिर कर के वे उसकी पीठ पर नज़र गड़ाए रहे। इतने में शेर ने मुँह मोड़ लिया। रात के उस अँधेरे में उसकी दहाड़ सुनकर घबड़ा गए, लेकिन हठपूर्वक उन्होंने अपनी नज़र उसकी आँखों में गड़ाई। तब वह बिदक गया। गर्जना करते हुए और पूँछ पटकते हुए घूमने लगा। कभी लगता था कि अब वह श्रीमहाराज पर टूट पड़ेगा। आखिर वह दहाड़ते हुए और धुनी पर छलाँग लगाते हुए आँखों से ओझल हो गया। सद्‌गुरु की दया देखकर उनकी आँखों से आँसू उमड़ पड़े। भूख-प्यास लगी थी। कोई सहारा नहीं था। सद्‌गुरु का चिंतन करते हुए न जाने उन्हें कब नींद आ गई।

सुबह जब आँख खुली तब कुछ ताज़गी महसूस हो रही थी। उन्होंने आसपास देखा तो टूटी हुई कगार थी। उन्हें प्यास बहुत लगी थी। कगार के नीचे रेत थी। सद्‌गुरु का स्मरण कर के वे रेत में कूद पड़े। मुलायम रेत के कारण उन्हें कोई चोट नहीं आई। उन्होंने जी भरकर पानी पी लिया। वहाँ ऊपर कैसे पहुँचे ? आखिर वे नदी किनारे-किनारे चलने लगे। झाड़ियाँ पार करने के बाद उन्होंने देखा कि रेत में दुगुने आकार के लंबे चौड़े पैरों के निशान उभरे थे। लगा कि पास में कोई आदमी रहता है। उन पद-चिह्नों की थाह लेते-लेते वे आगे बढ़े

तो पाया कि एक गुफा के सामने वे खड़े है। गुफा सँकरी थी और उसमें अँधेरा छाया था। हिम्मत बाँधकर वे उसमें बढ़ते गए। कुछ दूरी पर रौशनी दिखाई दी और वे एक खुली जगह में पहुँच गए। वहाँ अच्छी पगडंडियाँ थीं। आश्रम के द्वार पर वही रातवाला शेर आँखें मूँदकर बैठा था। उन्होंने जाना कि यह सद्‌गुरु की लीला है। वे उसके चरणों में लोट गए तो देखा कि स्वयं सद्‌गुरु श्रीस्वामी समर्थ ही वहाँ विराजमान हैं। वे उनके चरणों से लिपट गए और आनंदाश्रुओं से सद्‌गुरु के पाँव पखारने लगे। श्रीस्वामी समर्थ ने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा कि, "बेटे डरने की कोई बात नहीं।" और वे तिरोधान हो गए। सद्‌गुरु के दर्शन से अब वे निश्चिंत हो गए और आगे बढ़े। दूर तक फैली घनी झाड़ियाँ, फूलों से लदे पेड़ लताएँ और कगार के पत्थरों से रिसनेवाले सोते देखकर श्रीमहाराज फूले नहीं समाए। उन्होंने चारों ओर ढूँढा तो कगार की एक छोटी-सी गुफा में एक कद्दावर योगिराज ध्यानस्थ बैठे थे। उन महान् योगी के दर्शन होने पर श्रीमहाराज ने उनकी स्तुति करते हुए उन्हें साष्टांग प्रणिपात किया। उन्हें देखकर योगिराज ने पूछा, "तुम यहाँ क्यों और कैसे पहुँच गए?" श्रीमहाराज ने कहा कि "आपकी प्रेरणा से आपके चरण-चिह्नों की थाह लेते हुए यहाँ पहुँच गया।" योगिराज प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीमहाराज को ध्यानयोग द्वारा अहं ब्रह्मासि के दृढ़ भाव को प्राप्त करने का उपदेश किया। श्रीमहाराज ने बताया कि "शरीर के विकारों पर विजय पाने के लिए मन को वश कर लेना चाहिए।" योगिराज को संतोष हुआ। उन्होंने आश्रम के आहते में लगा एक कंद श्रीमहाराज के हाथों भुनवाया। उसका छिलका उतारने पर उसमें हलुए जैसा जायकेदार गूदा निकला। उसे खाने पर श्रीमहाराज को आठ दिन भूख न सताई।

योगिराज ने उन्हें तीन-चार दिन अपने पास रख लिया। फिर कहा कि, "यहाँ तुम्हारी नर्मदा-परिक्रमा पूरी हो गई, अब तुम लौट जाओ।" उन्होंने श्रीमहाराज को आँखें मूँद लेने को कहा और एक क्षण में बड़े रास्ते पर लाकर छोड़ा। योगिराज से बिदा लेकर वे आगे बढ़े।

साने स्वामी

आगे चलकर साने स्वामी का मठ था। वे संन्यासी थे। वैद्यकी की

अच्छी जानकारी थी, दूर दूर से लोग उनके पास आते थे। सुबह छ: बजे से लेकर ग्यारह बजे तक दवाइयाँ देने का काम करते थे। तब निवृत्त होकर बादाम, खसखस को दूध में पीसकर उबटन बनाया जाता था। शिष्य उनके शरीर पर उबटन मलकर गरम पानी से उन्हें नहलाते थे। तब वे अकेले में शालिग्राम की पूजा करते थे। पूजा के बाद कफनी और खडाऊँ पहनकर दस घरों से मधुकरी माँग लाते थे। लौटकर वह मधुकरी मठ की गायों को खिलाकर भोजन करते थे।

श्रीमहाराज वहाँ पहुँचे। साने स्वामी एकांत में थे। शिष्यों के आग्रह पर श्रीमहाराज वहाँ रुके। भोजनोपरान्त स्वामी जी अपने बड़प्पन की बातें उन्हें बताते रहे। अपने योगी होने और दानी होने की बातें बखानते रहे। दो दिन वहाँ रहने पर श्रीमहाराज ने जान लिया कि स्वामी जी देह के चोचले कर रहे हैं। तीसरे दिन श्रीमहाराज को लेकर स्वामी जी नर्मदा किनारे ले गए। निवृत्त होने के बाद श्रीमहाराज ने नदी के दह में नहा लिया। स्वामी जी नदी में नहाने से कतराने लगे तो श्रीमहाराज ने कहा कि, "संन्यास लेकर गेरुए वस्त्र पहनने से कुछ नहीं बनता। मनोनिग्रह हो तो संन्यास की अपेक्षा गृहस्थाश्रम अच्छा।" स्वामी जी ने नाराज़ होकर कहा कि, "तुम्हें दह में कूदने को कहा जाए तो बोलती बंद होगी।" सुनते ही श्रीमहाराज मगर-मच्छ से भरे हुए बीस-पचीस हाथ गहरे उस दह में कूद पड़े। स्वामी जी घबड़ा गए। अब ब्रह्महत्या का पाप सिर पर आएगा, इस विचार से चिंतित हुए। श्रीमहाराज बड़ी देर तक बाहर नहीं निकले तो स्वामी जी शिष्यों को बुलाने मठ की ओर दौड़े। तब तक श्रीमहाराज पानी से बाहर निकले। स्वामी जी की आँखें खुल गईं। उन्होंने उनकी स्तुति करते हुए कहा कि, "आप महान् हैं। मेरी देह-ममता छूटने के लिए ही भगवान ने आपको भेजा था।" स्वामी जी ने सच्चे अर्थों में संन्यस्त रहने का दृढ़ निश्चय किया। श्रीमहाराज दो दिन वहाँ रहकर चल निकले।

त्रिशूल-पाणि के वन में

आगे एक गुसाईं का मठ था। श्रीमहाराज वहाँ पहुँचे। गुसाईं ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। उसने बताया कि, "आगे चलकर त्रिशूल-पाणि का घना वन है। उसमें राहें-पगडंडियाँ नहीं हैं। पथरीला प्रदेश है और जगह-जगह कगारें

टूटीं हुई हैं। इसमें यात्री गुमराह होकर भटक जाता है। उसमें घुसना मौत के मुँह जाना है। इन बातों की जानकारी परिक्रमा करनेवालों को देने के लिए ही मठ बनाकर मैं यहाँ रहता हूँ।" श्रीमहाराज ने उसे धन्यवाद देते हुए अधिक पूछताछ की तो उसने कहा कि, "इस त्रिशूल-पाणि में भगवान् शिव जी का निवास है। एक बार भगवान शिव जी पार्वती के साथ विलास कर रहे थे, तब अचानक परिक्रमा-यात्रियों को देखकर वे लजा गईं। उन्होंने शाप दिया कि, "इस वन में जो पैठेगा वह जीवित नहीं लौटेगा।" तब भगवान् शिव जी ने कहा कि, "जो योगी होगा, वही यहाँ से पार जा सकेगा या भक्तिभाव से जो मेरी शरण में आएगा उसकी मदद मैं करूँगा।" श्रीमहाराज ने गुसाईं से बिदा लेकर उसी त्रिशूल-पाणि के वन-प्रदेश से जाने का निश्चय किया।

झाड़ी में प्रवेश करने पर भीलों ने श्रीमहाराज को घेर लिया और अपना कर माँगा। उनके पास क्या था, जो देते? आखिर वे उनका गमछा लेकर चले गए। अब श्रीमहाराज के पास पहनने की धोती भर रह गई थी। वे वैसी हालत में भी आगे चले। उस वन में फल भी नहीं थे। दो दिन पानी पीकर रह जाना पड़ा। नुकीले पत्थरों से भरे मार्ग पर चलते हुए, उनके पैर फट गए और खून बहने लगा। फिर भी दृढ़ निश्चय के साथ वे आगे बढ़ते गए। शाम तक चलते-चलते पैर सूज गए और पैर बढ़ाना मुश्किल हो गया। वे चकराकर गिर पड़े। आस-पास में कोई सहारा नहीं था, पैरों में दर्द था। नींद भी नहीं आती थी। यौगिक क्रिया से दर्द भुलाने की चेष्टा भी बेअसर रही। उस हालत में वे रात भर तड़पते रहे।

नर्मदा मैया की कृपा

सूरज निकला, लेकिन थकान और दर्द के मारे चलना भी दूभर हो गया। श्रीमहाराज सद्गुरु श्रीस्वामी समर्थ जी को पुकार रहे थे। ऐसे में एक ग्वालन टोकरी लेकर वहाँ पहुँची। उसने प्यालाभर दूध उन्हें दे दिया और कहा, "महाराज, यह दूध लीजिए।" श्रीमहाराज ने कहा, "मैया, आपने कष्ट क्यों उठाया। हम लोगों के लिए नर्मदा का जल ही दूध है।" किंतु उसके आग्रह पर उन्होंने दूध पी लिया और पलक झपकते ही वह आँखों से ओझल हो गई। उसे देखने के लिए श्रीमहाराज उठ खड़े हो गए तो पाया कि भूख-प्यास मिट गई है और शरीर की

सारी वेदना छूट गई है। पैरों के जख्म भी भर आए हैं। उन्होंने जान लिया कि वह दयालु नर्मदा मैया ही थी। सद्गुरु की और नर्मदा मैया की कृपा पाकर उनकी आँखें सजल हो गईं।

खड्गधारी योगी

आगे बढ़ने पर अचानक एक योगी खड्ग उठाकर श्रीमहाराज के सामने खड़ा हुआ और युद्ध के लिए ललकारने लगा। लेकिन उन्होंने कहा कि, "हमें तो लड़ाई करनी नहीं है और कुछ पाना नहीं है।" तब उसने उन्हें आगे बढ़ने से रोक लिया और मारने के लिए तलवार उठाई, लेकिन उसका उठा हुआ हाथ जहाँ का तहाँ रह गया। "हमारी तलवार नाकाम हो गई", ऐसा कहकर वह श्री महाराज के चरणों में लोट गया। पूछताछ करने पर उसने बताया कि, "मैं गुर्जर देश का ब्राह्मण हूँ। गुरु की सेवा में प्रदीर्घ काल रहकर मैंने योग-साधना की, लेकिन सिद्धियों के चक्कर में फँसकर उन्मत्त हो गया और गुरु की बेइज्जती करने लगा। अपनी भूल को पहचान कर जब मैं गुरु की शरण में गया तब उन्होंने बताया था कि त्रिशूल-पाणि के वन में यह तलवार लेकर रहो। जिस सत्पुरुष के दर्शन से तुम्हारे हाथ की तलवार नाकाम होगी, उसकी कृपा से तुम्हारी उन्नति होगी। आज आपके दर्शन से मेरा काम बन गया। उपकृत हूँ। राह में आपको न कोई भय होगा, न तकलीफ।" और वंदना कर के वह चला गया।

योगी विट्ठल चैतन्य से भेंट

आगे बढ़ने पर श्रीमहाराज को योगी विट्ठल चैतन्य मिले। मिलते ही वे गले मिल गए और उन्होंने उन्हें दो दिन अपने पास रख लिया। उन्होंने भूख मिटानेवाले कंद उन्हें दे दिए। वे योगी पुरुष हमेशा वन में भटकते थे और परिक्रमावासियों की मदद और रक्षा करते थे। उन्होंने श्रीमहाराज को आगे की राह दिखाई और शीतोष्ण को सहने के लिए यौगिक क्रिया भी बताई। उन्होंने उन्हें समझाया कि, "यहीं परिक्रमा पूरी कर लीजिए। घरवालों को बिना बताए यात्रा करना उचित नहीं।" लेकिन श्रीमहाराज ने कहा कि, "मैं गुरु की आज्ञा से परिक्रमा कर रहा हूँ। यह अधूरी छोड़कर कैसे लौटूँ ?" योगी से बिदा लेकर वे आगे बढ़े।

गँजेड़ी गुसाईं

परिक्रमावासियों की सुविधा के लिए धनी लोगों ने त्रिशूल-पाणि के बाद खड़ाऊँ, जूते, वस्त्र, ऊनी कपड़े, छाते आदि देने का प्रबंध किया है। सब यात्री उससे लाभ उठाते हैं, लेकिन श्रीमहाराज ने कोई भी चीज नहीं ली। एक रईस ने पैरों पड़ते हुए गिड़गिड़ाकर उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने खडाऊँ और तुंबा ग्रहण किया। खडाऊँ वे कंधे पर लटका लेते थे और तुंबा हाथ में। उनकी निस्पृहता की बात फैल गई। संयोग से उसी दिन उस रईस को व्यापार में दुगुना लाभ हो गया। इसे सुनने पर अनेक यात्री उनके पीछे पड़ गए। श्रीमहाराज ख्याति की उपाधि से दूर रहना चाहते थे, इसलिए वे रातोंरात वहाँ से चुपचाप निकल पड़े और भडोच में नर्मदा के इस पार के घाट पहुँचे गए। गुमनाम बनकर एक पेड़ के नीचे उन्होंने रात बिताई। अमीर लोग उनकी खोज करते हुए वहाँ पहुँच गए। देखते-देखते वहाँ मेला-सा लग गया और फल-मिठाइयों का ढेर-सा लग गया। श्रीमहाराज वह चढ़ावा सब को बाँटते गए। दूसरे गुसाईं इससे जलने लगे। वे सब मिलकर उन्हें सताने पहुँचे। उन्होंने पीने को गाँजे की माँग की। श्रीमहाराज के पास तो कुछ भी नहीं था। वे गुसाईं उन्हें भला बुरा कहने लगे। पैसा माँगने लगे। श्रीमहाराज ने कहा, "मेरे पास कुछ भी नहीं। ये खडाऊँ और तुंबा है। लेना चाहो तो ले लो।" एक गुसाई ने तुंबा लेकर उल्टा किया, तो उसमें से गाँजा गिरने लगा। उन लोगों ने मनचाहा गाँजा लेकर जयजयकार किया। लेकिन श्रीमहाराज को सिद्धि का प्रयोग करने पर बड़ा खेद हुआ। भड़ोच शहर में उनकी कीर्ति फैल गई और उनके दर्शन के लिए भीड़ उमड़ने लगी।

बीमारी को ओढ़ लेना

एक गुजराथी ब्राह्मण बवासीर से पीड़ित था। पानी की तरह पैसा बहाया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। अंत में उसने सोचा कि नर्मदा मैया में देह विसर्जित कर दूँ। उसने माँ और पत्नी को झूठ-मूठ बताया कि मुझे सपना आया है कि नर्मदा में नहाने के बाद मैं रोग-मुक्त हो जाऊँगा। वे उसे लेकर भड़ोच में आईं। इतने में सुना कि भड़ोच में एक सिद्ध पुरुष आ गए हैं। वे लोग श्रीमहाराज के पास आए। उस ब्राह्मण ने उनके चरणों से लिपटकर कहा, "इस

बवासीर से मेरी जान निकल रही है। दया कर के मुझे उबारिए या मौत दीजिए। अब मैं आत्मघात करना चाहता हूँ।" और वह मछली की तरह तड़पने लगा। उसके साथ की स्त्रियाँ भी फूट पड़ीं। श्रीमहाराज ने उसे समझाया कि "ब्रह्मा भी किसीकी ज़िंदगी बढ़ा या घटा नहीं सकता। प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है। आत्मघात कर के प्रारब्ध को मिटाया नहीं जा सकता। आत्मघात का पाप भी फिर भोगना पड़ेगा। इसलिए भगवान की शरण में जाओ। दूसरा कोई चारा नहीं।" आँसू बहाते हुए उसने कहा कि, "साधु-पुरुष भगवान् से भी बड़ा होता है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे बचा लीजिए।" उसकी आर्त पुकार सुनकर श्रीमहाराज पसीज उठे। लेकिन सिद्धिद्वारा पुण्य लुटाकर उसे रोग मुक्त करने की अपेक्षा उन्होंने उसकी बीमारी स्वयं ओढ़ ली। दो दिन में ब्राह्मण स्वस्थ होकर लौट गया और उस बीमारी ने श्रीमहाराज को पकड़ लिया। वह बीमारी उन्हें आखिरी दम तक तड़पाती रही। ऐसी उपाधि से अपने को दूर रखने के लिए सद्‌गुरु से प्रार्थना करते हुए वे वहाँ से निकल पड़े।

अजगर से बचना

श्रीमहाराज नर्मदा के दूसरे किनारे से लौटने लगे। त्रिशूल-पाणि के उस पार भी वैसी ही झाड़ी थी। वे भगवान् का स्मरण करते हुए आगे बढ़ते गए। एक दिन सूरज डूब रहा था कि उन्हें ऐसा लगा कि कोई उनको अपनी ओर खींच रहा है। लगा कि वे बेबस होकर उसकी ओर खींचे जा रहे हैं। इतने में अचानक एक भील आ गया और उनकी बाँह पकड़ दूसरी ओर खींचकर ले गया। उसकी भाषा समझ में नहीं आ रही थी। आखिर उसने उँगली उठाकर दिखाया तो वहाँ बहुत बड़ा अजगर नज़र आया और उसकी साँस की चपट में आकर श्रीमहाराज उसके मुँह में खींचे-से जा रहे थे। उस भील ने उन्हें बचा लिया था।

कनक-कांता का मोह

उसके बाद रातभर चलकर वे एक देहात के पनघट पर आ पहुँचे और एक पेड़ के नीचे बैठ गए। गाँव के लोग वहाँ आ गए और इस अनजाने पुरुष को कौतुहल से देख रहे थे। इतने में दो औरतें वहाँ आ गईं और उन्हें देखकर काना-फूसी करने लगे। उनमें से एक ने हाथ नचाते हुए मिट्टी उठाकर उनकी ओर फूँक

दी। बात बनी नहीं, तब वे शरमिंदा होकर चल गईं। थोड़ी देर में एक बूढ़ा आदमी वहाँ आ गया। उसने श्रीमहाराज की पूछताछ की। उसने बताया कि, "यह दस मील का प्रदेश बड़ा बदनाम है। यहाँ की औरतें मांत्रिक हैं। वे परिक्रमावासियों पर जादू-टोना करके उन्हें बस में करती हैं। इसलिए यहाँ न रुककर आगे बढ़िए। इसी में भलाई है।" उसने एक दिन अपने मठ में रहने का आग्रह भी किया लेकिन श्रीमहाराज ने नहीं माना।

वह चला गया। थोड़ी देर में महीन वस्त्र पहनी हुई और यौवन से गदराई हुई एक सुंदर युवती अपनी सहेलियों के साथ आ गई। उसने उन्हें फल और फूल अर्पण करना चाहा, लेकिन उन्होंने उसे अस्वीकार किया। तब उस सुंदरी ने कहा कि, "आप जैसे परिक्रमावासी का आतिथ्य-सत्कार करना हमारा कर्तव्य है। मेरी दो सहेलियाँ आपको मोहित कर के मेरे पास ले आने के लिए आई थीं, लेकिन उनका बस नहीं चला। इसीसे आपकी श्रेष्ठता का पता चलता है। हमारी बहुत बड़ी संपत्ति है। हम आपको मठ-मंदिर बनवा देंगे। सेवा के लिए नौकर होंगे। यदि आप चाहें तो आपसे ब्याह करके मैं चरणों की दासी बनूँगी। हमारा मठ बड़ा संपन्न है। मेरे कोई भाई नहीं, इसलिए आप मुझसे ब्याह करके संपन्न महंत बन सकेंगे।" लेकिन श्रीमहाराज ने नम्रता के साथ कहा कि, "अपनी स्त्री को छोड़कर सब स्त्रियाँ मेरे लिए माँ-बहनें हैं।" उनकी बात सुनकर उस सुंदरी ने उनके चरणों में लोटकर कहा कि, "आज सुबह आपके पास आए मेरे पिता ही थे। नर्मदा माता की प्रेरणा से उन्होंने आपको परखने के लिए मुझे भेजा था, आप सच्चे साधु हैं।" उसने क्षमा-याचना करते हुए उनकी पूजा की और प्रसाद पाकर वह चली गई। नर्मदा मैया की इस लीला को देखकर उन्होंने उसे दंडौत किया और सद्‌गुरु का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया।

दूसरे दिन वह बूढ़ा मठपति श्रीमहाराज के पास आ गया और उसने उनकी स्तुति करते हुए उपदेश की याचना की। तब श्रीमहाराज ने उसे समझाया कि, "स्व-स्वरूप में जब तक लगन न हो जाए, तब तक अहंता और ममता नहीं छूटेगी। जारण मारण की विद्या नरक को पहुँचा देती है। कनक और कांता का लोभ परमार्थ के लिए बाधक होता है।" इतना समझाकर वे परिक्रमा के लिए आगे बढ़े।

शतधारा

आगे शतधारा का रमणीय स्थान था । वहाँ नर्मदा नदी ऊँची कगार से अनेक धाराओं में नीचे गिरती है, इसलिए उसे शतधारा कहते हैं । वहाँ बहुत बड़ी दह बन गई है और चंद्रशेखर, गौरी शंकर, कपूरेश्वर, गंगाधर, नागेश्वर आदि नामों से जानेवाले बाण उसमें मिलते हैं । पैसे लेकर बाण निकालकर देनेवाले पनडुब्बे होते हैं । वहाँ एक गरीब पागल-सा शिवभक्त ब्राह्मण चंद्रशेखर नामक बाण के लिए ज़िद पकड़कर बैठा था। वह आनेवाले लोगों से पैसा माँगकर चंद्रशेखर बाण पाने के लिए देता था, लेकिन उसे वह बाण कभी मिला नहीं । उसके रट लगाने के कारण लोग उसे चंद्रशेखर ही कहने लगे । श्रीमहाराज जब वहाँ पहुँचे तब उसने उनसे याचना की । उसका वह भोला भक्तिभाव देखकर श्रीमहाराज ने पूछा कि, "कितने चंद्रशेखर बाण चाहिए?" उसने सिर्फ एक बाण माँगा । तब वे तुरंत दह में कूद पड़े और अंजुलीभर चंद्रशेखर बाण लेकर ऊपर उठे। उनमें से एक उस गरीब ब्राह्मण ने ले लिया। श्रीमहाराज ने बचे हुए बाण दह में फेंक दिए और वे आगे बढ़ गए । उनकी यह लीला देखकर सब लोग देखते रह गए ।

कनौजिया ब्राह्मण तपस्विनी

श्रीमहाराज अगले मुकाम पर जाकर एक धर्मशाला में टिके । इतने में मटमैली कफनी पहनी हुई, जटाजूटधारी एक ब्राह्मण तपस्विनी उनके पास पहुँचकर अनुग्रह पाने के लिए प्रार्थना करने लगी । यौवन में ही वह विधवा हुई थी और उसके कोई संतान नहीं थी । वह कनौजिया विधवा ब्राह्मणी घर बार छोड़ नि:संग बनकर महेश्वर के पास आकर तपस्या करती हुई रहने लगी । वह करतल भिक्षा तरुतल वास करती हुई भगवान् शिव जी का चिंतन करते हुए एक पीपल के तले २४ वर्ष तपस्या करते बैठी थी। उसे सपने में शिव जी ने बताया कि, "तुम्हारी तपस्या सफल हो गई है । कल दुपहर में मैं फलानी धर्मशाला में आनेवाला हूँ । वहाँ तुम मेरे दर्शन कर लेना ।" वह ब्राह्मणी आकर श्रीमहाराज से प्रार्थना करने लगी । उन्होंने उसका अधिकार देखकर उसे अनुग्रह दे दिया । वह कृतकृत्य बनकर चली गई ।

सद्‌गुरु के अवतार की समाप्ति

इस बीच श्रीमहाराज के सद्‌गुरु श्रीस्वामी समर्थ महाराज जी के अक्कलकोट में समाधि लेने की खबर पहुँच गई । श्रीमहाराज इस खबर को पाकर बड़े दु:खी हो गए। उनकी ममतामयी गुरुमाई सदा के लिए छूट गई थी । सद्‌गुरु की महिमा अनंत होती है । उन्होंने कृपावश होकर अनंत उपकार कर के अपनाया था । स्व-स्वरूप देखने की अनंत दृष्टि उन्होंने दी और अनंत परमात्मा के दर्शन कराए । गुरु मैया के सिवा कौन सगा होगा भला ? श्रीमहाराज की आँखें छलक पड़ीं। वे दु:ख में डूब गए । अनमने बने रहे । उसी रात सपने में आकर सद्‌गुरु ने बताया कि, "मैंने शरीर को त्यागा है, लेकिन मैं जिंदा हूँ । तुम ओंकारेश्वर में अपनी परिक्रमा पूरी करो।" श्रीमहाराज को लग रहा था कि सद्‌गुरुराज हमें अनाथ बनाकर चले गए है, लेकिन स्वप्न के कारण उन्हें सद्‌गुरु की कृपा-छाया का अनुभव हुआ ।

पंथा के मठ में

श्रीमहाराज परिक्रमा के लिए आगे बढ़े। ३-४ दिन चलकर वे ओंकारेश्वर के निकट के पंथा में पहुँचे । वहाँ एक सिद्ध-पुरुष का स्थान था । वहाँ का मठपति बड़े आदर से श्रीमहाराज को मठ में ले आया । वह अकेला ही उस मठ में रहता था । मठ में एक चबूतरा था । उसे वह मठपति प्रतिदिन गोबर से लीप-पोतकर साफ करता था। उसके सामने रंगोली सजाता था। फिर चबूतरे पर व्याघ्रांबर बिछाकर पास में धुनी जलाकर रखता था । उस मठपति ने श्रीमहाराज को बताया कि, "वह स्थान बहुत पुराना है और वहाँ कोई अनधिकारी व्यक्ति बैठ नहीं सकता। बैठे तो उस पर संकट टूट पड़ते हैं ।" श्रीमहाराज ने उसपर बैठने ही इच्छा प्रकट की तो मठपति ने कहा कि, "कुछ हो जाए तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता ।" श्रीमहाराज वहाँ आसन लगाकर बैठ गए और दो दिन वहाँ ध्यानस्थ बैठे रहे। वे बड़े प्रसन्न हुए । मठपति को इससे संतोष हुआ और वह उन्हें अपना गुरु मानकर उनकी पूजा कर के उनकी सेवा करता रहा। अनेक लोग श्रीमहाराज के दर्शन के लिए आने लगे, मनौती मनाने लगे । श्रीमहाराज के कारण उस मठ में बरकत आ गई । वे कोई छ: महीने वहाँ रहे, लेकिन इस उपाधि से

मुक्त होने की उन्होंने सोची और वे ओंकारेश्वर की ओर चुपचाप चल दिए ।

ओंकारेश्वर में

नर्मदा नदी को पार करना था । नौका पर सवार होने के लिए श्रीमहाराज के पास पैसे कहाँ थे ? माँझी पैसे के बिना उन्हें नौका पर सवार करने के लिए तैयार नहीं थे। वे पानी में उतरकर जाने लगे, तब माँझियों ने उन्हें नौका में बिठा लिया। एक आदमी ने पहचान लिया कि राघव चैतन्य नाम से विख्यात यही साधु हैं । तब लोग उनका जयजयकार करने लगे। एक भक्त ने उनकी पूजा की । श्रीमहाराज के कहने पर उसने नर्मदा में दक्षिणा अर्पण की ।

जानकीदास बाबा का ओसारा

ओंकारेश्वर के पास नर्मदा-कावेरी संगम की पहाडी पर ऋणमुक्तेश्वर का प्राचीन मंदिर है। मंदिर की बगल में जानकीदास बाबा का ओसारा है । श्रीमहाराज को मालूम हो गया था कि जानकीदास बाबा के ओसारे में पाँच फनोंवाला और सात फनोंवाला, दो नाग रहते हैं । वे किसीको भी वहाँ रहने नहीं देते । इसलिए श्रीमहाराज ने वहीं रहने का निश्चय किया । वे वहाँ गए । उस ओसारे में कूड़ा-कचरा भरा हुआ था । एक पुजारी वहाँ के कोने में रखा दिया जलाकर चला जाता था । उसने श्रीमहाराज को वहाँ न रहने की बिनती की, लेकिन उनका निश्चय देखकर उसने वह ओसारा साफ किया । दूसरे दिन शाम को वे बैठे थे, इतने में पाँच फनोंवाले नाग ने उनके पैरों को लिपट लिया और वह फुत्कारने लगा। श्रीमहाराज ने उससे कहा कि, "जैसे आए हो वैसे चले जाओ ।" तब चुपचाप चला गया।

श्रीमहाराज पंथा के मठ से चुपचाप चल निकले थे । वे शाम तक नहीं लोटे तो मठपति उन्हें ढूँढने लगा । ओंकारेश्वर में वह उनके दर्शन कर के जयजयकार करने लगा। उसे सुनकर भीड़ हो गई । उसने श्रीमहाराज की महिमा लोगों को सुनाई । दो-तीन सौ गुसाईं उनकी ख्याति सुनकर वहाँ पहुँच गए । लेकिन श्रीमहाराज अंदर जाकर समाधि में बैठ गए । वे दिन भर बाहर नहीं निकले। जो भुक्खड़ गुसाईं उन्हें सिद्ध पुरुष समझकर खाने-पीने को मिलेगा, इस आशा से वहाँ जमा हो गए थे, वे उन्हें भला-बुरा कहते हुए चीखने-चिल्लाने लगे।

मठपति असमंजस में पड़ गया । वह बार-बार झाँककर देखता था, लेकिन श्रीमहाराज जागे नहीं । वह उनकी प्रार्थना करते हुए बैठा रहा। दयार्द्र होकर श्रीमहाराज ने आँखें खोलीं । मठपति से उन्होंने कारण पूछा तो उसने सारी हालत बता दी । उन्होंने कहा कि, "संकट बिना बुलाए जैसे आते हैं, वैसे ही वे चले जाते हैं । इसलिए सारा भार परमात्मा पर छोड़ देना चाहिए । तब जो उचित है उसे वह करता है" और वे मुँह ढाँककर सो गए । भीड़ के लोग उतावले हो रहे थे और वे बड़ी आशा से ओसारे की ओर देख रहे थे ।

इतने में श्रीमहाराज की छाती पर कोई चीज़ आ गिरी । उन्होंने देखा कि एक अनिंद्य सुंदरी खड़ी है और सारा ओसारा प्रकाश से जगमगा उठा है । उस देवी ने कहा कि, "यात्रियों को खाना खिलाओ ।" और वह देखते-देखते बिजली की तरह ओसारे से निकलकर आँखों से ओझल हो गई। श्रीमहाराज ने इधर-उधर देखा तो कोने में सोने का एक कंगन पड़ा हुआ था । भीड़ में कुछ पुण्यवान लोग थे, उन्हें उस देवी के दर्शन हो गए और वे "नर्मदा माता की जय" के नारे लगाने लगे । इस चमत्कार को देखकर लोगों ने श्रीमहाराज की गरिमा जान ली । कुछ लोग ओसारे में आकर उनके चरणों में लोट गए । उस कंगन से महाभोज हुआ । यात्री संतुष्ट हो गए । श्रीमहाराज को लगा कि अब मेरी परिक्रमा पूरी हो गई है ।

श्रीमहाराज की खोज

श्रीमहाराज किसीको बिना बताए रावेरी से नर्मदा-परिक्रमा के लिए निकल पड़े थे । सौ. जानकी माँसाहब पुणे से उनकी कोई चिट्ठी न आने से चिंतित हो गईं । उन्होंने पुणे के पते पर चिट्ठी लिखी लेकिन जबाब नहीं आया तब घबराकर वे पुणे गई । श्रीमहाराज का कोई पता नहीं चला । रावेरी के समधी ने भी खोज की, पता चला कि वे ओंकारेश्वर चले गए हैं । तो माँसाहब एक ब्राह्मण और एक नौकर को लेकर ओंकारेश्वर पहुँचीं । वहाँ पूछताछ करने पर भी कोई पता नहीं चला । तब वे अन्न-जल त्यागकर ओंकारेश्वर के मंदिर में बैठ गईं। तीसरे दिन एक स्वामी ने वहाँ आकर पूछताछ की । ये वे ही स्वामी थे, जिनके पास श्रीमहाराज अपनी चीज़ें छोड़ गए थे । स्वामी जी ने शिनाख्त की तो उन्हें

लगा कि उनके पास चीजें छोड़कर जो चले गए हैं, वे ही होंगे। उन्होंने माँसाहब को अपने पास की चीजें दिखाईं। उनकी पोशाक, जूते और छाते को माँसाहब ने पहचान लिया । उन्हें देखकर वे तड़प उठीं ।

स्वामी जी ने माँसाहब को समझा-बुझाकर धीरज बँधाया । तब वे परिक्रमा के मार्ग की पूछताछ कर के श्रीमहाराज को ढूँढने के लिए साथ के ब्राह्मण और नौकर को लेकर निकलीं । वे टीलेवाले गुसाईं से मिलीं । उनसे पता चला तो वे पत्थरगीर बाबा के मठ में पहुँची। बाबा जी ने श्रीमहाराज की स्तुति करते हुए बताया कि, "आप आगे जाने की मत सोचिए। श्रीमहाराज जल्द ही लौटेंगे और उन्हें कुछ भी नहीं होगा। वे सकुशल घर लौटेंगे । आप चिंता मत कीजिए।" लेकिन माँसाहब ने ज़िद पकड़ी थी और श्रीमहाराज से मिलने की रट लगाई थी। तब बाबा जी के यहाँ से राह दिखाने के लिए एक सेवक को लेकर वे साने स्वामी के पास पहुँचीं ।

साने स्वामी ने बड़े आदर के साथ श्रीमहाराज के गुण गाए और माँसाहब को सलाह दी कि, "आप घर लौट जाइए। श्रीमहाराज सकुशल घर लौटेंगे। आगे जाने पर वे आपको मिलेंगे नहीं और वे परिक्रमा पूरी किए बिना लौटेंगे भी नहीं।" आखिर माँसाहब हारकर पुणे में लौट आईं । विठ्ठल-रुक्मिणी के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी। उन्होंने उनकी अखंड सेवा चलाई। जिस दिन श्रीमहाराज ओंकारेश्वर लौट आए, उसी दिन माँसाहब को स्वप्न में दृष्टांत हुआ कि वे लौट आए हैं । तब वे साथ में ब्राह्मण और नौकर को लेकर ओंकारेश्वर आ गईं और वहाँ ब्रह्मचारी स्वामी के यहाँ मिलना हुआ । सब की खुशियाँ लौट आईं। वे सब पुणे आए ।

सद्गुरु की आज्ञा पर श्रीबीडकर महाराज ने अत्यंत कष्टमय और सत्त्व हरण करनेवाली नर्मदा-परिक्रमा पूरी की । देह और प्राणों की परवाह कभी नहीं की । ई सभ अकथ कहानी है । यह सब अकथनीय कहानी है।

* * *

७. वैराग्य

जथा लाभ संतोष सदा

नर्मदा-परिक्रमा से लौटने पर श्रीमहाराज के स्वभाव में बड़ा फर्क आ गया । वे पुणे में अपने कसबा पेठ के घर में रहते थे, लेकिन ख्याति से दूर रहते गए। उन्होंने अपने को देह-प्रारब्ध के हाथ सौंप दिया और संतुष्ट रहकर परमात्मा के ध्यान में वे मगन रहने लगे। गृहस्थाश्रम में होने के कारण अतिथि-सत्कार को बड़े प्रेम से निभाया जा रहा था । कुछ वर्षों में घर की जमा-पूँजी खत्म होती गई, तब हालात देखकर दोस्त-रिश्तेदार किनारा करने लगे । जो लोग उन्हें भाऊसाहब सराफा या भाऊसाहब सुगंधी कहते थे, वे अब उन्हें बौराया या सिरफिरा कहने लगे। फिर भी कोई आकर कुछ माँगता तो वे उठाकर दे देते थे । ना नहीं कहते थे। कर्ज़ा चढ़ गया और महाजन सताने लगे, तो उन्होंने अपना मकान बेच दिया और वे किराए के मकान में आकर रहने लगे। वहाँ भी याचक आकर तंग करने लगे। सौ. जानकीबाई माँसाहब उनकी इस उदारता को रोकने की कोशिश करती थी, लेकिन व्यर्थ । कोई आकर कपड़ा माँगता, कोई जूते, तो कोई प्याला-बरतन। श्रीमहाराज बिना हिचकिचाए माँगी हुई चीज़ दे देते थे। माँसाहब भी उन्हें ताने देने लगीं ।

तब उन्होंने नया रुख अपनाया । सुबह होते ही घर से निकलते थे, दुपहर में लौटकर नहा-धोकर भोजन करते थे और फिर बाहर निकलकर रात में लौटते थे । शाम के समय वे सोमेश्वर के मंदिर में जा बैठते थे । वहाँ बाहर से आए साधु-संन्यासी डेरा डालते थे । श्रीमहाराज कोने में बैठकर देखते कि उनमें कोई खरा साधु मिल जाए । नर्मदा-परिक्रमा से लौटने पर कोई छः वर्ष तक इस प्रकार परमात्म-चिंतन में डूबकर वे अपने को छिपाते रहे। संयोगवश एक दिन एक योगी वहाँ सोमेश्वर के मंदिर में आकर टिका। वह बाँसुरी बजाने में कुशल

था। वह मग्न होकर नाद-ब्रह्म में डूब जाता था, तो सुननेवाला मुग्ध हो जाता था। वह बाँसुरी बजाते बाहर निकलता तो बिना माँगे ५-६ रुपए इकट्ठा हो जाते थे। डेरे पर आने पर वह ज़रूरत के पैसे रखकर बाकी पैसा दान कर जाता था। एक दिन महाराज सोमेश्वर के मंदिर में आकर अपने कोने के स्थान पर बैठने लगे, तो धुनी के पास बैठे उस योगी ने पुकारा, "बाँमन देवता, अपने को छिपाने से क्या लाभ? इधर आओ, इधर।" और उसने हाथ पकड़कर अपनी धुनी के पास उन्हें बिठाया। इसे देखकर दूसरे लोग चकित हो गए, क्योंकि वह साधु किसीको भी अपनी धुनी के पास बैठने नहीं देता था। उसने अपने शिष्य से चिलम बनाकर बड़े प्रेम से श्रीमहाराज के हाथ में थाम दी। उन्होंने ज़ोरदार दम लगाया तो शोला उठा। उसे देखकर देखनेवाले दंग रह गए और जान गए कि ये कोई सिद्ध पुरुष हैं।

एक लालची गुसाईं कोने में बैठा था। वह श्रीमहाराज के पास गिड़गिड़ाने लगा कि कल से धुनी के लिए लकड़ी नहीं है। उन्होंने उससे कहा कि, "तुम्हारी तकदीर के माफिक भगवान् ने तुमको दिया, फिर भी तुम खुश नहीं। तुम्हारी तकदीर में होगा तो अभी के अभी लकड़ी मिलेगी। हम देनेवाले कौन हैं और तुम लेनेवाले कौन?" सब लोग सुन रहे थे। बाँसुरीवाले साधु ने भी सुना। दुपहर में उसे लकड़ी के लिए पैसे दिए थे फिर भी उसे संतोष नहीं, इसे देखकर उसे भी बुरा लगा। श्रीमहाराज की बात सुनकर वह गुसाईं नाराज़ होकर बुदबुदाता हुआ अपनी जगह जा बैठा। वह दो-चार बैरागियों को लेकर श्रीमहाराज को ताना देते हुए भजन गाने लगा कि, 'दया धरम नहीं मन में....' बाँसुरी वाले साधु को गुसाईं की हरकत अच्छी नहीं लगी। उसने उसे रोककर कहा कि, "किसीका भी दिल दुखाना अच्छा नहीं। वह तो बाँमन देवता है, बड़ा सिद्ध है। पाजी दुनिया से उसने अपने को छिपा रखा है। उसे बदनसीब मत समझाना।" इतने में एक मारवाड़ी मंदिर में आया। उसने देखा कि उस गुसाईं की धुनी के पास लकड़ी नहीं है, तो उसने आधा मन लकड़ी मँगवाकर उसे दे दी। तब वह शरमिंदा हो गया।

लोक-संपर्क बढ़ा

उन दिनों पुणे में ठोसर और वाकनीस नाम के आदमी थे। घर के खाते-पीते थे। दिलबहलाव के लिए दिनभर शहर में घूमते हुए दूसरों का,

खासकर नए आदमी का मज़ाक उड़ाना उनका काम था। वे भी सोमेश्वर मंदिर में पहुँचे। बाँसुरीवाले योगी को देखकर मज़ाक उड़ाने लगे, "बाँसुरीवाले बाबा, आप तो कृष्णमूर्ति हैं। रंग भी वैसा ही पाया है। बस, नीचे दो हाथों की कमी है।" योगी बाबा ने मज़ाक की ओर ध्यान न देकर कहा, "अच्छा, कन्हैया की लीला अगाध है, उसे तुम लोग क्या पहचानोगे? वह देखो, बाँमन देवता बड़ा सिद्ध है। तुम्हारे गाँव में है। तुम्हारे पास होकर भी तुम नहीं पहचान सके तो भगवान् कृष्ण को क्या पहचानोगे?" तब दोनों ने शरमाकर श्रीमहाराज को नमस्कार कर के उनका पता पूछ लिया। उन मज़ाकखोरों को इसीका इंतजार था। दूसरे दिन वे श्रीमहाराज के घर पहुँचे। फिर वे हर रोज वहाँ जाने लगे। अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने श्री महाराज का नाम 'सफेद साधु' रखा था। वे दोनों उनको साथ लेकर घूमने जाते थे। अपनी आदत से मजबूर होने से रास्ते में जो मिलते थे, उनका मज़ाक उड़ाते थे। इस बहाने श्रीमहाराज का लोगों से मेल-जोल बढ़ने लगा। लोग उनसे प्रभावित होने लगे। कुछ लोगों का काम उनके दर्शन से बनने लगा और कुछ लोग भक्ति से उनके पास आने लगे। धीरे धीरे श्रीमहाराज लोगों के संपर्क में आने लगे। कुछ भक्त लोग उनके घर सीधा पहुँचाने लगे।

ढोंगी योगी

मार्तंडमामा नाम के सज्जन अपने को योगी कहलाते थे। गीता पर प्रवचन करते थे। एक दिन वह योग-साधना पर प्रवचन करते-करते खयाली पुलाव पकाकर लोगों को प्रभावित करने लगे। मज़ाक उड़ानेवाले लोगों ने श्रीमहाराज से पूछा कि, "भाऊ साहब, आप तो योग जानते होंगे। हम अज्ञानी जीव हैं।" उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, "आप अज्ञानी हैं, यही अच्छा है। अन्यथा कोई दाढ़ी नहीं रख सकता, न कोई भगवे वस्त्र पहन सकता और न कोई योग की बात करते हुए खयाली पुलाव पका सकता। जब तक स्वर्ग नहीं जाते, तब तक न रंभा दिखाई देती है और न अमृत को चखा जा सकता है, फिर शब्दों का खेल रचने में क्या जाता है? यह भी एक धंधा है।" मार्तंडमामा को बात चुभ गई। उन्होंने श्रीमहाराज से कहा, "आपके पास सिद्धता हो तो दिखाइए।" श्रीमहाराज बोले, "घर आएँगे, तो बता देंगे।" मार्तंड मामा बोले, "घर क्यों? यहीं दिखा

दीजिए।" तब श्रीमहाराज ने आसन लगाया। वे अविचल बैठे रहे। मार्तंडमामा आधा घंटा भी स्थिर नहीं रह सके। आखिर उन्होंने हार मान ली। उन्होंने उनका लोहा मान लिया।

ईर्ष्यालु शास्त्री

कसबा पेठ में श्रीमहाराज के पड़ोस में एक शास्त्री जी रहते थे। पत्नी के गुज़रने के बाद उन्होंने बिना सोचे-समझे संन्यास ग्रहण किया। वह निभ न पाया तो ज्योतिषी बन गए। वे श्रीमहाराज से जलते थे। एक सज्जन एक दिन शास्त्री जी के पास जन्म-पत्री लेकर पहुँचा। उन्होंने पूछा कि, "पत्नी गर्भवती है, वह कब प्रसूत होगी।" शास्त्री ने गणना करके बताया कि, "आठ दिन पर लड़की होगी। मूल नक्षत्र का डर है, इसलिए जप, दान आदि करना होगा।" श्रीमहाराज वहीं थे। उनकी राय पूछी तो उन्होंने कहा कि, "दो दिन में लड़का होगा।" उनका कहना सच हुआ। वह सज्जन २५ लोगों का सीधा और दो रुपये के पेढ़े लेकर आ गया। शास्त्री जी के दिल पर साँप लोट गया। वे श्रीमहाराज की परीक्षा करने के लिए रोज़ उनके यहाँ आने लगे। ठोसर-वाकनीस वहाँ बैठकर सुबह-शाम लोगों की हँसी-मज़ाक-ठठोली करते थे। शास्त्री जी भी दिनभर बैठे रहते थे। उनका दुपहर का भोजन भी वहीं होने लगा। एक दिन शास्त्री जी ने ताना देते हुए कहा कि, "हम तो जुआर की रोटी खाते-खाते तंग आ गए थे। स्वाद लेने के लिए आपके यहाँ आ गए, लेकिन यहाँ भी वही।" श्रीमहाराज ने कहा "जो आपका था वही आपके सामने आ गया। मन शुद्ध रखिए तो पेढ़े मिलेंगे। यही भगवान् का न्याय है। हमें देह-प्रारब्ध से जो मिलता है, वही लड्डू-जिलेबी से बड़ा है।" इतने में एक भक्त पेढ़े लेकर आ गया और पचीस लोगों का सीधा भी ले आया। टोकरी भर बूँदी के लड्डू भी आ गए। शास्त्री जी के पंद्रह दिन मिष्टान्न खाते कट गए। शास्त्री जी शरमिंदा हो गए, लेकिन आदत से मजबूर थे। उन्होंने सोचा कि भाऊसाहब का पुणे में बस चलता है। श्रीजरा बाहर जाकर देख लें। इसलिए उन्होंने श्रीमहाराज से काशी जाने का आग्रह किया। वे मान गए। तब श्रीमहाराज के पास सिर्फ ५-६ रुपए ही थे।

* * *

८. काशी यात्रा

काशी-यात्रा के लिए प्रस्थान

काशी-यात्रा की बात से श्रीमाँसाहब प्रसन्न हो गईं। वे कुछ बर्तन, सीधा और कपड़े लेकर तैयार हो गईं। शास्त्री जी भी स्टेशन पर पहुँचे। तीनों के टिकट लेने पर श्रीमहाराज के पास सिर्फ सवा रुपया बचा था, लेकिन वे भगवान् पर भरोसा रखकर निश्चिंत थे। वे लोग कल्याण स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ शास्त्री जी ने जलपान की इच्छा प्रकट की, तो श्रीमाँसाहब ने उन्हें लड्डू दे दिया। उस समय शास्त्री जी ने कहा कि, "इस समय दूध में बनी रोटियाँ होतीं, तो कितना अच्छा होता।" थोड़ी देर में श्रीमहाराज का एक भक्त कल्याण स्टेशन पर आ गया। उसने पूछताछ की। घर जाकर उसने दूध में रोटियाँ बनवाईं और कुछ खाने की चीजें लेकर वह लौटा। उसने तीनों के लिए नासिक तक के टिकट ला दिए और श्रीमहाराज के सामने दस रुपए का नोट रखा। तीनों को रेल गाड़ी पर सवार कर के वह खुशी से लौट गया। शास्त्री जी आँखों से देखकर भी भेद समझ नहीं पाए।

नासिक में

तीनों नासिक पहुँचे। श्रीमहाराज अपने मुकाम पर ही पड़े रहते थे। बवासीर की बीमारी थी, इसलिए बाहर नहीं निकलते थे। खरीदारी का काम श्री शास्त्री जी करते थे। वे बाज़ार से अच्छी चीजें खरीद लाते थे, ताकि पैसे जल्दी उड़ जाएँ और श्रीमहाराज उनसे पैसे का इंतजाम करने को कहें। लेकिन उनकी इच्छा कभी पूरी नहीं होती थी। पैसे खत्म होने पर कोई न कोई राह निकल आती थी। यद्यपि श्रीमहाराज बाहर नहीं निकलते थे, लेकिन लोगों को भनक मिल गई थी कि नासिक में एक सिद्ध योगी आ गए हैं। मुंबई के एक गुजराथी व्यापारी ने सट्टा खेला था। उसमें पचास हजार का नुकसान होने का अंदेशा था। इस संकट से उबरने के लिए वह किसी सिद्ध पुरुष की खोज में नासिक आया था। उसे

मालूम होने पर वह पूजा की साम्रग्री और पेढ़े-फल आदि लेकर श्रीमहाराज की सेवा में पहुँच गया। उसने अपनी मुसीबत बताई तो उन्होंने कहा कि, "भगवान् की शरण में जाओ। वह प्रेम का भूखा है। वह भक्तवत्सल निभा लेगा।" लेकिन उसने कहा, "आपके हाथों में ही सब है। आप ही मुझ गरीब पर दया कीजिए।" श्रीमहाराज ने कहा कि, "दृढ़ भावना हो, तो वही काम आएगी।"

दो दिन में उस व्यापारी के मुनीम का तार आया कि सट्टे में नुकसान न होकर दस हजार का मुनाफा हुआ है। तुरंत वह श्रीमहाराज की सेवा में पहुँचा। पूजा-सत्कार कर के उसने सौ का नोट उनके सामने रखा और कृतज्ञ होकर लौटा। शास्त्री की आँखें इसे देखकर खुल गईं। वे पछताने लगे। उन्होंने श्रीमहाराज से क्षमा-याचना की और वे पुणे लौट गए। सत्पुरुष की परीक्षा लेने में वे ही चूक गए थे।

काशी में

शास्त्री जी के लौट जाने पर दो-चार दिनों में श्रीमहाराज श्रीमाँसाहब को लेकर काशी के लिए निकले। ज़रूरत के पैसे रखकर बचे हुए दान-धर्म में खर्च किए। काशी पहुँचकर वे नागपुरकर श्रीराम मंदिर में गए। वहाँ के पुजारी ने उनके रहने का अच्छा इंतज़ाम किया। संयोग से श्रीमहाराज ने वहाँ कदम रखा, उसी दिन से उस मंदिर में अधिक लोग आने लगे और अधिक चढ़ावा आने लगा। एक सज्जन श्रीराम जी के लिए नैवेद्य भेजते थे, वह इनके लिए भी दो थाल सजाकर भेजने लगा।

कुंभ मेले के लिए प्रयाग में

इस बीच कुंभ मेला आ गया, इसलिए श्रीमहाराज प्रयाग में आ गए। समूचे देश के साधु-संन्यासी और भक्तजन इस अवसर पर गंगा-स्नान करने के लिए पहुँच जाते हैं। अनेक संप्रदायों के व्रती और अखाड़ों के हज़ारों साधु-गुसाईं-संन्यासी, यति अपने सरेअंजाम के साथ आ जाते हैं और अपने डेरे वहाँ जमाते हैं। उनमें नंगे साधु भी सैकड़ों होते हैं। पर्व के अवसर पर वे सब जुलूस में शाही ठाठ-बाट के साथ स्नान के लिए निकलते हैं। उस साल अँग्रज़ों ने नंगे स्नान को बुरा समझकर पाबंदी लगा दी। साधुओं को रोकने के लिए चाक

चौबंदी लगा दी। सैंकड़ों हथियारबंद घुड़सवार सिपाही रास्ता रोककर खड़े थे। उनका मुखिया लेफ्टनंट कर्नल खुद घुड़दल लेकर पहुँचा।

श्रीमहाराज भी वहाँ पहुँचकर जुलूस देख रहे थे। जुलूस की अगुवाई हृषिकेश के एक वयोवृद्ध परमहंस सिद्ध योगी कर रहे थे। वे निड़र बनकर आगे बढ़ रहे थे। पता नहीं सरकार क्या करेगी। नेतृत्व करनेवाले उस परमहंस की नज़र भीड़ में खड़े श्रीमहाराज पर पड़ी। वे भीड़ को चीर कर उनके पास पहुँचे और उन्होंने श्रीमहाराज का हाथ थामकर कहा कि, "भाई, हमारे साथ चलो।" और वे उन्हें पकड़कर जुलूस में ले आए। इस बात से देखनेवाले चकित रह गए। इसी समय अँग्रेज़ कप्तान घोड़े पर सवार होकर आ धमका। पता नहीं कि अब क्या जुल्म ढाएगा। कप्तान की नज़र सिद्ध योगी पर पड़ी तो वह ठिठक गया। वह एकदम घोड़े से उतरा और टोपी उतारकर उसने उनके सामने माथा झुकाया। सिद्ध योगी ने फटकारते हुए कहा, "क्या हिंदू धर्म को डुबाने चले हो?" शब्द सुनते ही कप्तान पर गहरा असर हो गया। उसने झट से घोड़े पर सवार होकर पाबंदी हटाने का ऐलान कर दिया। अँग्रज़ों के सैनिक हट गए और भीड़ सिद्धों की जय के नारे लगाने लगी। गूँजते हुए नारों के बीच उस सिद्ध योगी ने श्रीमहाराज के साथ पावन गंगा-स्नान किया। सभी यात्री जान गए कि श्रीमहाराज पहुँचे हुए महात्मा हैं, जिनको स्वयं सिद्ध योगी ने बड़ा सम्मान दिया है।

श्रीमहाराज जब तक प्रयाग में रहे तब तक उस सिद्ध योगी से मिलने जाते थे और वे बड़े प्रेम और आदर के साथ मिलते थे। सौ. जानकी माँसाहब ने भी प्रयाग में इच्छित धर्म-कर्म किया। बाद में दोनों काशी आए।

काशी में पांडुरंग भट

काशी में श्रीमहाराज ब्रह्मघाट पर एक मकान में ऊपरी मंजिल पर रहते थे। पांडुरंगभट भड़कमकर नाम के एक दशग्रंथी विद्वान ब्राह्मण काशी आने पर उसी मकान में निचले तल्ले पर रहने लगे। काशी के शास्त्री-पंडित उनका लोहा मानते थे, किंतु शास्त्री जी थे कि लोगों से यथासंभव दूर रहकर शिव जी की सेवा में लगे रहते थे। सुबह स्नान करके दो हाथों में गंगा-जल की गगरियाँ उठाकर रुद्र-पठन करते हुए विश्वेश्वर का अभिषेक करते थे। दुपहर तक बार-बार गंगा

जल लाकर अभिषेक का क्रम चलता था।

श्रावण मास आया तो उनकी पत्नी के मन में काशी विश्वेश्वर को शिवामूठ अर्पण करने विचार उठा । महिलाएँ प्रति श्रावणी सोमवार क्रम से चावल, तिल, मूँग, अलसी जैसे अन्न शिव जी के अन्नपति होने के कारण उनको मुट्ठीभर अर्पण करती हैं। पति से अनुमति पाने पर उसने निर्धारित दिन पर जाने का संकल्प किया। उसी रात शिव जी ने स्वप्न में आकर पांडुरंगभट को बताया कि, "तुम जिस घर में रहते हो उसकी ऊपरी मंजिल पर मैं रहता हूँ । वहाँ शिवामूठ अर्पण करने पर मुझे वह प्राप्त होगी।" उन्होंने वह स्वप्न-दृष्टांत पत्नी को बताया। उसने कहा, "अगर ऐसा दृष्टांत मुझे मिले तो मैं मानूँ।" जब दूसरे दिन उसे स्वप्न-दृष्टांत हुआ । तब दोनों को यकीन हो गया ।

पांडुरंगभट काशी आए थे, तब से अपने क्रिया-कर्म में डूबे रहते थे । पास-पडोस में कौन रहता है, इसका उन्हें ध्यान नहीं था । पति-पत्नी दोनों ऊपरी मंजिल पर गए । श्रीमहाराज कमरे में लेटे थे और माँसाहब देव-दर्शन के लिए चली गई थीं । कपाट बंद थे । भट पति-पत्नी वहाँ बैठे रहे । बारह बजे माँसाहब लौटीं तो कपाट खुले । पांडुरंगभट अंदर जाकर श्रीमहाराज के चरणों में लोट गए और उन्होंने स्वप्न-दृष्टांत निवेदन किया। श्रीमहाराज ने कहा कि, "हम तो अपना देह-प्रारब्ध भोगते हुए यहाँ पड़े हैं। हमारी स्नान-संध्या बिस्तर पर ही होती है । तुम्हारा जैसा भाव हो, वैसा तुम कर लेना ।" भट की पत्नी ने श्रीमहाराज के चरणों में शिवामूठ अर्पण की । उन पति-पत्नी ने जान लिया कि श्रीमहाराज स्वयं काशी विश्वेश्वर हैं और वे सब तरह से उनकी सेवा करने लगे ।

पांडुरंगभट श्रीमहाराज के साथ वेदांत विषयक चर्चा करते थे । श्रीमहाराज ने उन्हें आत्म-रूप के दर्शन कराए । भट को श्रीकाशी विश्वनाथ और श्रीमहाराज के चरणों में दृढ़ भावभक्ति हो गई । दशग्रंथी ब्राह्मण होने के कारण लोग भट को निमंत्रण देते थे। काशी के ब्राह्मण उनका मज़ाक उडाते थे कि पांडुरंगभट एक बूढ़े पागल बाबा के फेर में पड़े हैं । ब्राह्मण लोग भट से कहते थे कि, "उस पागल बूढ़े के फेरे में मत पड़िए ।" वे लोग श्रीमहाराज और भट का मज़ाक उड़ाते थे। तब भट ने उनको बहुत फटकारा । फिर भी कुछ ब्राह्मण श्रीमहाराज का बड़प्पन

जानते थे ।

ब्राह्मणों का गर्व-हरण

एक धनी सज्जन पांडुरंगभट जी का बड़ा आदर करते थे । उन्हें भट जी के द्वारा श्रीमहाराज की महानता ज्ञात हुई । वे चाहते थे कि श्रीमहाराज के चरण-स्पर्श से अपना घर पवित्र बने । उन्होंने मंत्र-जागर के लिए श्रीमहाराज को निमंत्रित किया । वे उन्हें पालकी पर सवार कर के ले गए । वहाँ बहुत से ब्राह्मण आए थे । श्रीमहाराज को व्यासपीठ पर बिठाया था। शरारती ब्राह्मणों को यह अखरा । उन्होंने श्रीमहाराज से कहा, "आप ही मंत्र-पठन प्रारंभ कीजिए ।" तब वे सद्‌गुरु का स्मरण कर के ध्यान में डूबे। उसके प्रभाव से ब्राह्मण भी चुप हो गए। तब वह धनी सज्जन श्रीमहाराज की शरण में जाकर उनसे प्रार्थना करने लगा। जाग्रत होने पर उन्होंने ब्राह्मणों से मंत्र-पाठ करने को कहा और वे अपना अहंकार छोड़कर पठन करने लगे। सब ने श्रीमहाराज को साष्टांग प्रणिपात किया। सब उनका आदर करने लगे ।

कृष्णानंद स्वामी

एक दिन श्रीमहाराज और पांडुरंगभट गंगा किनारे की ओर निकले । रास्ते में कृष्णानंद स्वामी का मठ था । स्वामी जी उसी समय मठ से निकले । उन्हें देखकर भट ने नमस्कर किया, लेकिन श्रीमहाराज ने नहीं किया । भट से परिचय प्राप्त कर लेने पर स्वामी जी ने श्रीमहाराज को बिठा लिया और वे उनसे पारमार्थिक बातें करने लगे । उन्होंने स्वामी जी को बताया कि, "केवल अहं ब्रह्मास्मि रटने से कोई लाभ नहीं है, जब तक कि उसकी अनुभूति न जागे ।"

अजगर स्वामी

एक बार श्रीमहाराज की अजगर स्वामी से भेंट हुई । वे अजगर-वृत्ति से रहते थे। उन्होंने अपनी देह-ममता पूर्णत: त्यागी थी । वे कड़ी धूप में तपती हुई रेत में या बरसात में उफ़नती गंगा में घंटों खड़े रहते थे। उन्होंने श्रीमहाराज को बड़े प्यार से "आओ बेटा" कहकर अपने पास बुलाकर बताया कि, "जब स्वयं काशी-विश्वनाथ ने तुम्हें आदर दिया है, तब तुम्हें किसी कृष्णानंद की या अजगर स्वामी की ज़रूरत नहीं है ।"

गया की यात्रा

काशी और प्रयाग में दस-ग्यारह मास बिताने पर श्रीमहाराज गया क्षेत्र गए। पांडुरंगभट ने पहले वहाँ के एक गयावल को पत्र लिखा था कि श्रीमहाराज एक सिद्ध पुरुष हैं और उनका वहाँ अच्छा इंतज़ाम करना। वह गयावल बड़ा धनी था। वह श्रीमहाराज की अगवानीके लिए स्वयं स्टेशन पर पहुँचा। श्रीमहाराज के मटमैले कपड़े देखकर उसे निराशा हुई कि यह कैसा सिद्ध पुरुष है?

उस गयावल के दो ब्याह हो चुके थे और दोनों औरतें गुज़र चुकी थीं। तीसरा रिश्ता बन नहीं रहा था। सिद्ध पुरुष की कृपा से तीसरा ब्याह होगा, इस आशा से वह स्वयं स्टेशन पर आया था। उसने श्रीमहाराज को ढूँढकर कहा, "आपकी ख्याति सुनकर मैं स्वयं आपको लिवाने आया हूँ।" तब श्रीमहाराज बोले कि, "हमारे वास्ते आए हो या अपनी औरत के वास्ते? अपने दिल से मालूम कर लो।" बात सुनते ही गयावल उनकी योग्यता पहचान गया। उसने उन्हें घर लाकर बड़ा सत्कार किया और ब्याह की मनोकामना पूर्ण करने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि, "पंढरपुर के विठ्ठल भगवान ने पुंडलीक, नामदेव, तुकाराम आदि भक्तों पर कृपा की। वह आज भी वैसा ही कृपालु है, कोई फर्क नहीं। जैसा भाव वैसा फल। भक्ति-भाव होगा तो आठ दिन में मनोकामना पूरी होगी।" और सचमुच आठ दिन में उसका ब्याह हो गया। वह श्रीमहाराज को भगवान् मानने लगा। गया में रहते वे परमात्मा के ध्यान में डूबे रहते थे।

भंग-चंडू का नशा

गया में श्रीमहाराज की कीर्ति फैलती गई। उस गयावल के साथ वे घूमने निकलते थे। गया में बड़े पैमाने पर भंग, गाँजा, चरस आदि का नशा करने का प्रचलन है। घर-घर में भंग बनती है -इकरंगी से लेकर दसरंगी तक। एक दिन कुछ लोगों ने श्रीमहाराज को पंचरंगी भंग पिला दी। कोई नौसिखिया होता तो पीते ही ढेर हो जाता, लेकिन श्रीमहाराज को कोई नशा नहीं आया। दूसरे दिन उन लोगोंने उन्हें नवरंगी भंग पिलाई लेकिन कोई असर नहीं हुआ।

तब वे लोग उन्हें चंडूखाने ले गए। एक बड़ा मांत्रिक था और उसने लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनाया था। वहाँ चरस, चंडू का बड़ा अड्डा था। चंडू

पीने में उस मांत्रिक का कोई सानी नहीं था, इसलिए लोग उसकी इज़्ज़त करते थे और वह घमंड में फूला रहता था। वह सिद्धि के बल पर चमत्कार करता था। लोगों से पैसा कमाता था और नशे में डूबा रहता था। उसने भगवान् के मंदिर को चंडूखाना बना दिया था। कोई नया आदमी वहाँ पहुँचे तो उससे नशा करवाकर उसकी फज़िहत देखने में वहाँ के लोगों को मज़ा आता था।

कुछ लोग श्रीमहाराज को लेकर इस अड्डे पर पहुँचे। शुरु में चरस की चिलमें फूँकीं, लेकिन उन्हें कोई नशा नहीं हुआ। तब लोगों ने चंडू की चिलम बनाकर श्रीमहाराज के हाथ में थाम दी। चंडू पीनेवाला आदमी तकिया या मसनद से सटकर बैठता है, क्योंकि चंडू का कश लेते ही जमीन पर वह लोट जाता है। श्रीमहाराज थे कि चिलम बुझकर खाक हो गई लेकिन उनपर नशे का कोई असर नहीं हुआ। वे वहाँ से निकले और पास के श्रीहनुमान जी के मंदिर में जाकर पद्मासन लगाकर और सिर पर कपड़ा ओढ़कर बैठ गए।

पता चला तो मांत्रिक सकपकाया। उसे एहसास हो गया कि श्रीमहाराज सिद्ध योगी हैं। उसे अपने किए पर पछतावा होने लगा। वे रुष्ट हो न जाएँ इसलिए वह पूजा की सामग्री लेकर उनके पास पहुँचा और उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा। दस बजे श्रीमहाराज जागे और उन्होंने सिर पर ओढ़ा वस्त्र हटाया। मांत्रिक ने क्षमा याचना की और पूजा स्वीकार करने की प्रार्थना की। तब वे बोले कि, "जो हुआ सो भगवान् की इच्छा से ठीक ही हुआ। लेकिन तुम्हें देखकर मुझे बड़ा खेद होता है। हर एक प्राणी सुख पाने के लिए तड़पता रहता है। उसे जो अच्छा लगता हैं, उसीको वह अपना धर्म मानने लगता है। वह यह नहीं सोचता कि अपने किए का दूसरे पर क्या परिणाम होगा।"

मांत्रिक ने पूछा कि, "दुनिया में आकर सुख पाने के लिए कोशिश न करे तो क्या करें? योग, दान, तप आदि भी सुख के लिए होते हैं न? सुख तो एक -सा होता है। तब फलानी तरह से ही सुख पाने के लिए आग्रह क्यों हो?"

श्रीमहाराज बोले, "इसलिए कि हमें लत पड़ गई है और वह हमसे छूटती नहीं। तुमने भगवान् का मंदिर बनाया लेकिन उसे चंडूखाना बना दिया। ऊपरी तौर पर सभी सुख एक-जैसे लगते हैं। सत्त्वगुण के कारण मिलनेवाले सुख

में और तमोगुण के कारण मिलनेवाले सुख में कोई भेद नहीं है। शराब के नशे में डूबे आदमी में और गहरी नींद में सोए आदमी में कोई फर्क नहीं, लेकिन पहले में अज्ञान है और दूसरे में ज्ञान। उनमें जमीं-आसमाँ का फर्क है। तमोगुण अज्ञान में परिणीत होता है, तो सत्त्वगुण ज्ञान में। तमोगुण अध:पतन को ले जाता है, तो सत्त्वगुण मोक्ष के द्वार की ओर बढ़ाता है। बड़ी विद्याएँ बड़ी मेहनत से मिलती हैं। तुमने मंत्र-विद्या को बड़े परिश्रम से पाया, लेकिन उसका उपयोग तमोगुण बढ़ाने के लिए कर रहे हो। ऐसी विद्या का उपयोग परोपकार के लिए, दूसरों के दु:ख दूर करने के लिए करना चाहिए। इसके लिए पैसा लेना नहीं चाहिए क्योंकि भगवान् सब का योगक्षेम निभाता है। परोपकार-जैसा पुण्य नहीं और पर-पीड़ा जैसा पाप नहीं है। तुम मंदिर में भगवान् के सान्निध्य में रहते हो। सँभल जाओ। वही मेरी पूजा मान लो, दूसरी पूजा की ज़रूरत नहीं।”

श्रीमहाराज के शब्दों का मांत्रिक पर गहरा असर हो गया। उसने अपनी गलती मान ली और उनके चरणों में बुरी लतें छोड़ने की शपथ ली। श्रीमहाराज के न चाहते हुए भी उसने उन्हें हार पहनाया और उन्हें घर तक पहुँचाया।

गया में श्राद्धादि कर्म कर के और विष्णुपद पर पिंडदान करने के बाद श्रीमहाराज और माँसाहब पुणे लौटे।

* * *

९. अन्य यात्राएँ

औदुंबर में

काशी-प्रयाग-गया की त्रिस्थली की यात्रा से लौटने पर कुछ दिनों बाद श्रीमहाराज औदुंबर चले। औदुंबर सांगली ज़िले में कृष्णा नदी के तट पर बसा रमणीय स्थान है, जहाँ दत्तावतार श्रीनृसिंह सरस्वती जी ने चातुर्मास बिताया था। यह दत्तोपासना का जाग्रत स्थान माना जाता है। उसके ठीक सामने नदी के उस पार भिलवड़ी ग्राम में भुवनेश्वरी का मंदिर है। श्रीमहाराज और माँसाहब दोनों जब भुवनेश्वरी के मंदिर में पहुँचे तब सूरज डूब चुका था। उस पार-औदुंबर में जाने के लिए नाव नहीं थी। जाड़ा उतर रहा था। माँसाहेब को ठिठुरन हो रही थी। श्रीमहाराज चुपचाप पड़े रहे। सुबह तक नदी में नाव चलने की उम्मीद नहीं थी। ऐसे में अचानक एक माँझी नौका लेकर इस पार आया और औदुंबर जाने के लिए पुकारने लगा। रात का अंधेरा गहरा रहा था। वे दोनों बापट की धर्मशाला में पहुँचे। उन्होंने वहाँ के मुनीम से कमरा माँगा, लेकिन इन यात्रियों से कुछ मिलनेवाला नहीं था, इसलिए मुनीम कतराने लगा। आखिर उसने उन्हें एक कमरा दे ही दिया। उस खाली पड़ी धर्मशाला में गाँव के कुछ लोग समय बिताने के लिए आते थे और हँसी-ठठोली करते रहते थे। उस रात वे गाँजा पीकर श्रीमहाराज की हँसी उड़ाते रहे।

दूसरे दिन प्रात: माँसाहब ने तीर्थ-स्थान, देव-दर्शन, पूजन किया। श्रीमहाराज अपने कमरे में ही लेटे परमात्मा का ध्यान करते रहे। सुबह मुनीम जी जागा, इतने में भगवान् दत्त का पुजारी दौड़ता हुआ आया। उसने कहा कि, “सपने में आकर दत्त प्रभु ने बताया है कि कल का मेरा भोग बापट की धर्मशाला में मुझे पहुँचाओ।” पुजारी की बात से मुनीम जान गया कि कमरे में रहनेवाले कोई सिद्ध-साधु हैं। वह श्रीमहाराज के पास पहुँचकर क्षमा-याचना करने लगा।

वे बोले, "तुमसे गलती हो गई हो, तो दत्त प्रभु से क्षमा माँगो । उनके आश्रय में रहते हो । उनकी सेवा करते रहो। गप्पें हाँकने में और गाँजा पीने में अपनी ज़िंदगी बरबाद मत करो ।"

वहाँ पांगले शास्त्री नामक सज्जन सिद्धि के लिए गणेश जी का अनुष्ठान कर रहे थे । उन्हें थोड़ी-सी सिद्धि भी मिल गई थी। वे मंत्र-सिद्धि के सहारे लोगों से पैसा कमाते थे और सुख-चैन से गुज़र-बसर करते थे। समाचार पाकर वे भी श्रीमहाराज के पास चले आए। औदुंबर में आकर भी श्रीमहाराज ने तीर्थ-स्नान नहीं किया इसलिए वे शास्त्री उन्हें ताना देने लगे। तब उन्होंने कहा कि, "आदमी दूसरों की ओर नहीं, अपनी ओर देखे । क्षुद्र मंत्र-सिद्धि से पैसा कमाकर इंद्रियों का सुख पाने से नरक मिलेगा। मुँह में कीड़े बिलबिलाने लगेंगे। वह परमार्थ का मार्ग नहीं है ।"

शास्त्री जी शर्मिंदा होकर खिसक गए। उस रात उन्हें सपना आया कि उन्हें वाचा-सिद्धि प्राप्त हो गई है । लोगों की कठिनाइयाँ दूर हो रही हैं। शास्त्री जी को इज़्ज़त, शोहरत और दौलत मिल रही है । वे ठाठ-बाट से रहने लगे हैं । शिष्यों से वे घिरे रहने लगे हैं । शिष्याओं से उनका मेल-जोल बढ़ता गया है और लोगों को उनके दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं। आखिर उन्हें आमांश हो गया और कमज़ोर होकर वे बिस्तर पकड़े रहे । बिस्तर पर ही मल-मूत्र होने लगा। शिष्य-शिष्याएँ सेवा करते रहे, लेकिन बदबू के मारे एक एक कर भाग गए। उन्हें एहसास होने लगा कि मुँह में कीड़े बिलबिला रहे हैं। वे मुँह से कीड़े निकालने के लिए चीखने-चिल्लाने लगे। सेविका ने उनके मुँह में उँगलियाँ डालकर कहा कि मुँह में कुछ नहीं है। भला बुरा कहते हुए उन्होंने उसे मारने के लिए हाथ उठाया तो हाथ दीवट पर पड़ गया और बत्ती बुझ गई। वे जग पड़े।

सपने की बात से वे घबराकर श्रीमहाराज के पास आ गए और राह दिखाने की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने शास्त्री को बताया कि, "धन के लिए साधन करना बुरा है। सिद्धियाँ वारांगना की तरह होती है। वे क्षणिक सुख देकर चली जाएँगी। पुण्य-क्षेत्र में रहकर ऐसे बुरे कर्म करने में आत्मनाश है। मंत्र-सिद्धि कमाई जाती है, जब कि योग-सिद्धि भगवान की कृपा से प्राप्त होती है ।"

श्रीमहाराज के उपदेश से शास्त्री जी की ज़िंदगी बदल गई ।

भगवान् ज्योतिबा के दर्शन

औदुंबर से वे दूसरे दत्त-क्षेत्र नृसिंहवाडी गए। वहाँ से कोल्हापुर जाकर उन्होंने श्रीमहालक्ष्मी जी के दर्शन किए। कोल्हापुर के निकट ज्योतिबा का पहाड़ है, जहाँ भगवान् ज्योतिबा का (केदारनाथ) विख्यात मंदिर है। श्रीमहाराज और माँसाहब ज्योतिबा के पहाड़ के लिए चले। उसी दिन ज्योतिबा के पुजारी गोविंद भटजी खट्याल को सपना आया और ज्योतिबा भगवान् ने कहा कि, " मेरा भक्त कोल्हापुर से आ रहा है । उसका अच्छा इंतजाम रखना ।"

वहाँ की धर्मशाला में पहुँचने पर माँसाहब ने श्रीमहाराज को खीर बनाकर दे दी और शनिवार का व्रत होने के कारण वे कुछ फल खाकर बैठीं। श्रीमहाराज आत्म-स्वरूप में मग्न होकर सोए रहे । कुछ देर बाद उमदा घोड़े पर सवार होकर पठान जैसे एक सरदार ने आकर पूछा, "बाबाजी सोए हैं क्या? मैं दर्शन के लिए कोल्हापुर जा रहा हूँ। शाम को लौटूँगा, तब दर्शन के लिये आ जाना।" श्रीमहाराज के जागने पर माँसाहब ने उन्हें बताया । वे बोले, "सरकार-दरबार में हमारा कोई काम नहीं है। उनका काम हो तो वे आ जाएँगे।" पुजारी खट्याल भी आ पहुँचा। वह उन्हें अपने घर ले गया। शाम को भगवान् के दर्शन हुए । बाहर मंदिर के आँगन में सजा हुआ घोड़ा खड़ा था। माँसाहब ने पहचान लिया कि यह वही घोड़ा है, जिस पर सवार होकर सरदार आया था। श्रीमहाराज ने कहा कि, "तुम्हें स्वयं भगवान् ज्योतिबा जी ने दर्शन दिए हैं।" माँसाहब गद्गद हो गई। घोड़ा पसीने से तर होकर खड़ा था। प्रतिदिन मंदिर में घोड़े को सजाकर खड़ा किया जाता है। माना जाता है कि भगवान् ज्योतिबा जी घोड़े पर सवार होकर श्रीमहालक्ष्मी के दर्शन कर के शाम को लोटते हैं। आँगन में खड़ा घोड़ा जब पसीने से तर हो जाता है, तब ऐसा माना जाता है कि, भगवान् कोल्हापुर से लौटे हैं।

कुछ दिन वहाँ बिताने पर श्रीमहाराज पुणे लौटने लगे तो पुजारी खट्याल उन्हें बिदा करने दूर तक चला। उसने श्रीमहाराज को उपदेश देने की प्रार्थना की तो उन्होंने बताया कि, "पेट भरने तक अन्न और अच्छी संगति मिल जाए तो मान लो कि आधा काम बन गया। सौभाग्य से तुम्हें भगवान की संगति मिल गई है।

उनकी सेवा मन से करोगे तो वे तुम्हें कमी महसूस होने नहीं देंगे । भगवान् अपने मन में ही होते हैं । जब मन विकारों से मलिन पड़ जाता है, तब वे दिखाई नहीं देते । दुनिया आदान-प्रदान पर चलती है । तुम दूसरों का बुरा चाहोगे, तो तुम्हारे पल्ले बुराई आएगी। इस दुनिया में जो थोड़ी-सी ईश्वर सेवा बन सकेगी, उसे मन से करोगे तो वह श्रेष्ठ हैं। भगवान् भाव का भूखा है ।"

आलंदी में

श्रीमहाराज संसार से अलिप्त रहने की कोशिश करते थे। माँसाहब की ज़िंदगी खुशहाल घर में बीती थी । अब द्रव्याभाव की स्थिति उन्हें खलती थी । उनकी बेचैनी उलहाने-ताने देने में प्रकट हो जाती थी। ऐसी हालत में श्रीमहाराज का मन दूर जाने को चाहता था । वे एक दिन श्रीज्ञानेश्वर महाराज के समाधि-स्थल आलंदी के लिए निकल पड़े। घर से निकलते ही ज़ोरों की बारिश होने लगी, लेकिन श्रीमहाराज भीगते हुए बिना रुके चलते रहे । रास्ते में एक धर्मशाला थी, उसका आश्रय उन्होंने ले लिया । वहाँ के लोगों ने सूखे कपड़े दे दिए और सेंकने के लिए आग जलाई । उस धर्मशाला में श्रीज्ञानेश्वर महाराज जी की पादुकाएँ थीं।

दूसरे दिन सुबह निकलकर वे आलंदी पहुँचे तो उनके इंतज़ार में एक ब्राह्मण बैठा था । उन्हें लेकर वह अपने यहाँ पहुँचा । उसने उन्हें उबटन और खुशबूदार तेल से खूब मल-मलकर नहलाया । बड़े आदर से रेशमी धोती पहनाकर पक्वानों का भोजन खिलाया। बीड़ा और दक्षिणा भी दी । श्रीमहाराज ने बीड़ा ले लिया और दक्षिणा श्रीज्ञानेश्वर महाराज को अर्पण करने को कहा। एक अपरिचित से ऐसा आतिथ्य पाकर उन्हें अचरज हुआ था । उनके पूछने पर उसने बताया कि, "मैं यहाँ आलंदी में दो महीने अनुष्ठान कर रहा हूँ । कल रात श्रीज्ञानेश्वर महाराज ने सपने में आकर बताया कि, "तुम्हारे अनुष्ठान की सफलता के लिए मैं कल दस बजे आ रहा हूँ । मेरे नहाने और भोजन का अच्छा इंतज़ाम रखो।" और श्रीज्ञानेश्वर महाराज का जयजयकार करते हुए वह श्रीमहाराज के चरणों में लोट गया । ऐसी उपाधियों से दूर रहने के लिए उन्होंने मंदिर में रहने की सोची, तब उस ब्राह्मण ने मंदिर के एक ओसारे की जगह साफ कर के उन्हें दे दी। श्रीमहाराज ने श्रीज्ञानेश्वर महाराज के दर्शन किए और वे ओसारे में आकर लेट

गए ।

परमात्मा का ध्यान करते-करते वे ऐसे खो गए कि रात के ग्यारह बजे वे जागे । चाँदनी खिली हुई थी। किसीकी आहट पाकर श्रीमहाराज ने उस ओर देखा तो एक सलोनी सुंदरी सजधजकर वहाँ उन पर मादक डोरे डालती हुई और कामुक भाव से नजरें डालती हुई घूम रही थी। उन्होंने इस भुलावे को देखकर वायु-स्तंभन किया । उस सुंदरी ने उनसे प्रार्थना की कि, "हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।" तब श्रीमहाराज ने कहा कि, "ज्ञानेश्वर महाराज की ओर से हमारा यथोचित आतिथ्य हुआ है । हमारा उन्हें संदेश पहुँचाना कि हम गाफिल नहीं है।" सुनते ही वह सुंदरी देखते-देखते ओझल हो गई। श्रीमहाराज भगवान् की इस लीला को देखकर चकित रह गए ।

आलंदी के श्रीनृसिंह सरस्वती

दूसरे दिन श्रीमहाराज आलंदी के विख्यात सत्पुरुष श्रीनृसिंह सरस्वती जी से मिलने गए । उन्हें देखते ही स्वामी जी ने बड़े आदर के साथ उनका स्वागत किया और अपने पास बिठा लिया । उनमें पारमार्थिक बातें होने लगीं । उन्होंने कहा कि, "भटकते हुए शरीर को कष्ट देने की अपेक्षा एक स्थान पर रहकर साधन करने से वह फलद्रूप होता है ।" तब श्रीमहाराज ने बताया कि, "शरीर की ममता योगमार्ग में रोड़े ड़ालती है । ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह किसी विशिष्ट मार्ग से ही दूर होती है । जिसे जो मार्ग सुविधाजनक लगे, उसे वह अपनाए । किसी भी यम-नियम के झमेले में न अटकते, देह प्रारब्ध को भोगकर ही मिटाना चाहिए। चाहे सुख मिले या दुःख उठाने पड़े । इसके लिए प्रारब्ध को भोगने का संकल्प होना चाहिए ।" श्रीमहाराज की बात सुनकर स्वामी जी को संतोष हुआ। दो दिन स्वामी जी के पास रहकर श्रीमहाराज श्रीसंत तुकाराम महाराज के स्थान देहू गाँव की ओर चले ।

देहू में

श्रीमहाराज आलंदी से निकलकर देहू में आ गए । श्रीसंत तुकाराम महाराज के दर्शन कर के वे मंदिर की लंबी तख्ती पर कोने में ध्यान करते बैठे गए। दूसरे दिन जन्माष्टमी थी । दुपहर के बाद भजन करते हुए वारकरियों के दल आने

लगे। झाँझ-मंजिरें और मृदंग के निनाद से सारा वातावरण गूँजने लगा। उस दिन मंदिर में भगवान् विठ्ठल को पंचामृत से नहलाने की परंपरा है। लोग भगवान् को पंचामृत-स्नान करा के प्रसाद ले जाते थे। उस भीड़-भाड़ में किसीका ध्यान श्रीमहाराज की ओर न गया। वे दिनभर के भूखे थे। आधी रात में किसीने उन्हें कटोराभर पंचामृत का प्रसाद दे दिया। दूसरे दिन जन्माष्टमी होने से उपवास था। श्रीमहाराज देहू के मंदिरों के दर्शन कर के पुन: तख्ती पर आ बैठे। दुपहर में किसीने उन्हें मूँगफली के दाने, गुड़ और दो केले ला दिए। थोड़ा-सा लेकर वे ध्यान में बैठे रहे। जन्माष्टमी का उत्सव होने पर उन्हें प्रसाद मिला। प्रह्लाद नामक एक सज्जन उन्हें अपने घर ले गया। उसकी दूसरी जवान पत्नी की मादक चेष्टाएँ देखने पर भोजनोपरांत वे भालचंद्र पहाड़ के लिए निकले, जहाँ श्रीतुकाराम महाराज नित्य भजन करते थे।

भगवान् शिव जी के दर्शन

पहाड़ की तलहटी में शिव जी का पुरातन और भव्य मंदिर है। वहाँ कोई आता-जाता नहीं था। भगवान् को अर्पण करने के लिए श्रीमहाराज निर्गुंडी के पत्ते ले आए। किंतु गर्भगृह नीचे था और वहाँ धुप्प अंधेरा था। चमगादड़ उड़ते हुए बाहर निकल रह थे। शिव-लिंग को स्नान कराने के लिए श्रीमहाराज के पास कोई बर्तन नहीं था। वे गमछा भिगोकर लाए। वे अंदर जाने लगे, तो एक नागराज बाहर निकल गया। संकल्प के अनुसार पूजा कर के उन्होंने शिव जी को साष्टांग प्रणिपात किया और वे प्रसन्न होकर निकले।

उन्होंने आग जलाने के लिए लकड़ियाँ जुटाईं, लेकिन चकमक या दियासलाई कहाँ से आए? उन्होंने मंदिर को छान मारा। एक कोने में चबूतरे पर एक आदमकद खत्ती बनाई थी। उसपर एक मटका रखा था। उस मटके को हटाते ही वहाँ तेल की बोतल, दियासलाई, चावल की थैली, आटे की थैली, गाँजा-चिलम, और ज़रूरी बर्तन भी मिले। पैसे की थैली भी वहाँ थी। अनचाहे सब कुछ मिल गया। श्रीमहाराज ने दिया जलाया। भगवान की पूजा की और बेसन की कढ़ी और चावल बनाकर भोग लगाया। धुनी जलाकर वे भगवान् का ध्यान लगाकर बैठे रहे। आधी रात में मंदिर में अचानक दिव्य उजियारा छा गया।

श्रीमहाराज ने देखा कि भगवान् शिव जी जगन्माता के साथ बड़ी प्रसन्नता से देख रहे हैं। पलभर के इस दिव्य दर्शन से उनकी आँखें आनंद से छलक उठीं। दूसरे दिन उन्होंने इधर-उधर से फूल जुटाकर भगवान् की पूजा बनाई।

उस दिन तुकाराम नाम का एक भक्त मंदिर में दर्शन के लिए आ गया। उससे पता चला कि उस मंदिर में एक गुसाईं रहता था। अभी हाल में उसने देह-त्याग किया। श्रीमहाराज जान गए कि सारी सामग्री उस अज्ञात गुसाईं ने ही रख छोड़ी थी। सामग्री समाप्त होने तक श्रीमहाराज ने वहीं रहने की सोची। उन्होंने उस तुकाराम के द्वारा पास-पड़ोस के गाँवों से ब्राह्मणों को बुलाकर शिव जी को लघु रुद्राभिषेक किया। फिर उन्होंने बची हुई सामग्री और पैसे उस तुकाराम को दे डाले। बाद में वे दुर्गम भालचंद्र पहाड़ पर पहुँचकर जहाँ संत शिरोमणि तुकाराम महाराज बैठते थे, वहाँ ध्यान लगाकर बैठ गए। रात में बाघ की दहाड़ सुनाई दी, लेकिन वह अन्यत्र चला गया। तीसरे दिन दुपहर में एक त्रिशूल धारी अवधूत प्रकट हुआ और उसने कहा कि, "सारे योग की परिणति मैं ही हूँ। मैं ही संसार में भरा हूँ। मेरे सिवा इस संसार में दूसरा कोई नहीं। ऐसी अनुभूति मिलने पर कोई भी भिन्न नहीं। भटकने से क्या लाभ? अब यहाँ से निकल जाओ।" ऐसा बताकर वह तिरोहित हो गया।

वहाँ एक दूसरी पहाड़ी है। वहाँ तुकाराममहाराज की पादुकाएँ हैं। उनके दर्शन कर के श्रीमहाराज देहू लौटे। तुकाराम नाम का भक्त उन्हें अपेन घर ले कया। उसकी खूबसूरत दूसरी पत्नी उच्छृंखल बनकर श्रीमहाराज की सेवा करने लगी, इसलिए दुपहर का भोजन होते ही वे चिंचवड के लिए निकले।

भगवान् के आदेश के अनुसार श्रीमहाराज वहाँ से निकल पड़े। वे चिंचवड आए। महान् गणेश उपासक मोरया गुसाईं की समाधि के दर्शन किए और वे सभा-मंड़प में बैठे रहे। एक परिचित सज्जन ने उन्हें देख लिया तो पुणे में श्रीमाँसाहब को खबर पहुँचाई और वहाँ के देवस्थान के उत्तराधिकारी को भी जानकारी दी। उन्होंने श्रीमहाराज का आदरातिथ्य किया। सूचना मिलते ही दूसरे दिन सुबह माँसाहब श्रीमहाराज को लिवा ले जाने के लिए पहुँच गईं।

सरोवर सूख जाने पर पंछी उड़कर चले जाते हैं। श्रीमहाराज के पास जब

तक धन था, तब तक नाते-रिश्तेदार घर में लगे रहे। लेकिन जब अभाव होने लगा तब भोजन-भट्ट एक-एक कर दूर होते गए। काशी से लौटने के बाद तो घर में श्रीमहाराज और माँसाहब दो ही रह गए। श्रीमहाराज हमेशा आत्मानंद में डूबे रहते थे। सुबह ग्यारह बजे तक बिस्तर छोड़ते नहीं थे। लोगों ने किनारा कर दिया। सांसारिक उपाधियाँ दूर हो गईं ऐसा मानकर श्रीमहाराज निश्चिंत हो गए लेकिन घर-गृहस्थी कैसे चले? उसकी जिम्मेदारी माँसाहब पर थी। उन्हें अभाव खलता तो वे ताने देती थीं। आखिर श्रीमहाराज ने घर बेच दिया और पैसा माँसाहब को धर दिय। उन्होंने कभी कतरब्योत करना नहीं जाना था। वे तीज-त्यौहार, दान-धर्म दिल खोलकर करती थी। ज़रूरत पड़ने पर वे अपना कोई गहना बेचकर काम चला लेती थीं। तंग हालत में वे कभी श्रीमहाराज को ताना देती थी कि सठिया गए हैं।

सब के दाता राम

श्रीमहाराज को सद्गुरु श्रीस्वामी समर्थ जी का अनुग्रह प्राप्त होने के बाद विरक्ति होती गईं। फिर भी वे गृहस्थ थे और गृहस्थी चलाने के लिए अपना गंधी का व्यवसाय करने लगे। दिवाली के पहले ठाणे और मुंबई में जाकर सुगंधी सामान बेचते थे। उनके बँधे ग्राहक शौक से माल खरीदते थे। सन् १८९६ में श्रीमहाराज जो इत्र मुंबई ले गए थे वे जल्दी खत्म हो गए। पुणे से मँगाया माल समय पर नहीं आया, इसलिए बचा हुआ सारा माल बेचकर उन्होंने लौट जाने की सोची। सुबह जो उन्होंने इत्र का संदूक खोला तो सभी शीशियाँ इत्रों से भरी हुई पाईं। वे चकित रह गए। उन्होंने उस दिन सारा इत्र बेच दिया। दूसरे दिन देखा तो सभी शीशियाँ भरी हुईं थीं। तब उन्होंने सोचा कि जो खाली शीशियाँ भर देता है वह घर बैठे क्या हमारी उपेक्षा करेगा?

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए सब के दाता राम।

और तब से लेकर उन्होंने पैसा कमाने के लिए कोई काम न करने का संकल्प किया और आगे १७ वर्ष तक जिंदगीभर उसे निभाया।

संतत्व की पहचान

सभी परिचित लोग श्रीमहाराज को अभी भी रामभाऊ गंधी के नाम से ही

जानते थे। उनके संतत्व की पहचान बहुत कम लोगों को थी। श्रीमहाराज को काशी में जो पांडुरंगभट भडकमकर शास्त्री मिले थे और जिन्हें स्वयं काशी विश्वनाथ ने स्वप्न में बताया था कि तुम्हारी ऊपरी मंज़िल पर रहनेवाला मैं ही हूँ। उन्हें शिवामूठ अर्पण करने पर वह मुझे मिल जाएगी। वे भडकमकर शास्त्री रहने के लिए ठाणे में बसे थे। श्रीमहाराज का अनुग्रह प्राप्त होने पर भी अभी उनमें कर्मठता बनी हुई थी। वे वेद पठन करते हुए प्रतिदिन भगवान् शिव जी को जल चढ़ाते थे। एक दिन ठाणे में भगवान् शिव जी को जल चढ़ा रहे थे। संयोग से उसी समय भट जी पानी भरी गगरियाँ लेकर पहुँचे कि श्रीमहाराज को देखते ही वे गगरियाँ छोड़कर उनके चरणों में लोट गए। उसे देखकर लोगों को उनके सत्पुरुष होने का अनुभव होने लगा।

पुणे में प्लेग

सन् १८९६ में पुणे में प्लेग की बीमारी का कहर बरपा। संक्रामक बीमारी होने से बीमार को अस्पताल में भर्ती होने का हुक्म हुआ। अँग्रेज़ सिपाही घर घर की तलाशी लेने लगे। पुणे में उनकी दहशत फैल गई। अँग्रेज़ सिपाहियों का बूट पहनकर घर में घुसना श्रीमहाराज को गवारा नहीं था। इसलिए वे टेंपल, गॉड, कुकिंग रूम कहकर सिपाहियों को रोक लेते थे। श्रीमहाराज से बेवजह जलनेवाले पड़ोसी लोग अँग्रेज़ सिपाहियों को जान बूझकर श्रीमहाराज का घर दिखाते थे। एक दिन एक बेमुर्रवत सिपाही घर में घुस गया। श्रीमहाराज ने उसे रोकना चाहा, तब उसने उन्हें मारने के लिए हाथ उठाया तो उन्होंने अपना सिर आगे किया। वह लौटने के लिए मुड़ा तो पैर फिसलकर सीढ़ियों से गिर पड़ा और उसके पैर की हड्डी टूट गई। उसने जाकर प्लेग-अफसर से शिकायत की तो उन्होंने उसे डाँट पिलाई कि 'टेंपल' बताने पर भी तुम अंदर क्यों घुस गए।

सप्तशृंगी की यात्रा

प्लेग के दौर में सिपाहियों की तकलीफ से बचने के लिए श्रीमहाराज सप्तशृंगी गढ़ की यात्रा के लिए चले गए। वहाँ उन्हें गुरुभाई श्रीसदानंद महाराज मिल गए। लोगों में वे 'हुपस्वामी' कहलाते थे। वे पहुँचे हुए योगी थे।

सप्तशृंगी गढ़ पर 'शितखड़ा' नाम का एक स्थान है। वहाँ पहाड़ की

टूटी हुई कगारें हैं और नीचे गहरी खाई। पुराने ज़माने में लोग मनौती पूरी होने पर उस स्थान से कूद पड़ते थे। इसमें जान का खतरा होता था। श्रीमहाराज हुपस्वामी के साथ बातें करते-करते उस स्थान पर पहुँच गए। वह बड़ा रमणीय स्थान है। मौज़ में आकर हुपस्वामी बोले कि, "भाऊसाहब, आप यहाँ से कूदेंगे क्या?" श्रीमहाराज ने कहा, "मैं अकेला तो क्या, तुम्हें भी लेकर कूद पड़ूँगा।" हुपस्वामी ने पूछा, "कूद तो पड़ेंगे, लेकिन क्या ज़िंदा रह सकेंगे?" श्रीमहाराज ने आव न देखा ताव। वे हुपस्वामी का हाथ पकड़कर पलक झपकते ही नीचे कूद पड़े। हुपस्वामी सद्गुरु का स्मरण कर के चिल्ला उठे। दोनों सकुशल नीचे पहुँचे। तब स्वामी बोले, "कैसा यह शैतानी काम? भाऊसाहब, हम आपके सामने तो नाचीज़ है।"

प्लेग की गाँठ

सप्तशृंगी से लौटने के बाद श्रीमहाराज ने कसबा पेठ का अपना मकान बेच डाला और वे शुक्रवार पेठ में गललिमकर के मकान में किराए पर रहने लगे।

वहाँ अने से लेकर श्रीमहाराज की तबीयत बिगड़ गई। पांडुरंगभट भडकमकर शास्त्री के कारण श्रीमहाराज रामचंद्र बल्लाल भागवत मुन्सीफ के यहाँ ठाणे में कई बार आते जाते थे। मुन्सीफ भागवत के पुत्र बलवंतराव भागवत श्रीमहाराज को बदलाव के लिए ठाणे में अपने घर ले गए। ठाणे-मुंबई के डाक्टरों-वैद्यों का इलाज करवाया। लेकिन कोई असर नहीं हुआ। डाक्टर तो कहते थे कि अब ये तो कुछ दिनों के ही मेहमान हैं। आखिर श्रीमहाराज ने दवाइयाँ लेने से इन्कार किया। एक दिन उन्हें बहुत बुखार आया। उन्होंने कहा कि, "दुपहर में मुझे थोड़ा-सा ताज़ा छाछ दिया करो।" आठ दिन के बाद उनकी जाँघ में आम जैसी निकली हुई गाँठ उन्होंने दिखाई। वह फूट कर खून और पीब बह गई और वे अच्छे हो गए। उन्होंने कहा कि, "तुम लोगों को पहले ही बता दिया होता, तो तुम घबरा जाते और न जाने क्या क्या दवा पिलाते।"

अपना मकान बेचकर गललिमकर के मकान में किराए पर रहने के बाद श्रीमहाराज अपने को देह-प्रारब्ध पर छोड़कर शांति से रहने लगे। सारा दिन वे लेटे ही रहते थे। पास में पान का समान, पीतल का खल, पिकदानी, पानी भरा लोटा रहता था। ठाणे से बलवंतराव भागवत और पांडुरंगभट भडकमकर बार

बार आते थे। उनके बहाने और भी कुछ लोग आने लगे, तब उपाधि बढ़ने लगी। पैसा कहाँ से आता? इनसे दूर रहने के लिए श्रीमहाराज उग्र रूप धारण करने लगे। प्रेम-भक्ति न रखनेवाले लोगों पर वे उबल पड़ते थे। उन पर गालियों की बौछार करने लगते। तब वे लोग उन्हें पगला बुड्ढा समझकर दूर होते जाते थे।

साधु-संतों की थाह

श्रीमहाराज की तबीयत बारबार बिगड़ती थी। वे बीमार होने पर बलवंतराव भागवत बिना सूचना के आप ही आप पहुँच जाते थे और उनकी सेवा, दवा-पानी कर के उनके कुछ ठीक होने पर चले जाते थे। भागवत के साथ भाई, मित्र, रिश्तेदार आदि भी आने लगे। कोई आमदनी नहीं और खर्चा भी बढ़ता जाता था। फिर भी कैसे बसर होती है, इसका पता नहीं चलता था। बलवंतराव भागवत के लिए वह रहस्य बना हुआ था।

रोज़ का खर्चा लोगों के आने पर बढ़ जाता था। गृहस्थी के लिए क्या नहीं लगता? बलवंतराव ज़रूरत की चीजों की सूची बनाकर श्रीमहाराज के सामने रखते थे। वे उन्हें गद्दी के नीचे से पैसे लेने को कहते। गद्दी के नीचे ज़रूरी पैसे मिल जाते थे। बलवंतराव के मन में सवाल उठता था कि गद्दी के नीचे पैसे कहाँ से आते हैं? एक दिन उन्होंने थाह लेने की सोची। श्रीमहाराज जागने पर अंदर गए तो बलवंतराव ने झाड़-बुहारकर बैठक को साफ किया। श्रीमहाराज के लौटने पर बलवंतराव ने सामान की सूची उनके सामने रखी, तो श्रीमहाराज बोले की, "गद्दी के नीचे से पैसे ले लो।" तब बलवंतराव ने कहा, "पैसे नहीं हैं। मैंने अभी अभी सफाई की है।" तब श्रीमहाराज बोले, "दुबारा देखो।" देखा तो गद्दी के नीचे ज़रूरी पैसे मिल गए। तब श्रीमहाराज बोले, "साधु-संतों की परीक्षा तुम क्या करोगे? उन की थाह देवादिकों को भी मिल नहीं सकती।"

श्रीमहाराज के घर में गालीचे के नीचे ज़रूरत के पैसे मिल जाते थे। नए घर में आने पर "अनन्याश्चिंतयन्तो" का अनुभव आने लगा। जितने पैसों की ज़रूरत होती थी, उतने पैसे कोई भक्त श्रीमहाराज के सामने रख जाता था। बाज़ार से खरीदारी का काम दत्तोपंत निरोखेकर सँभालते थे। दूसरे दिन के लिए पंद्रह रूपयों की ज़रूरत थी, लेकिन घर में दो आने भी नहीं थे। क्या करें? लेकिन

दूसरे दिन श्रीमहाराज जागे नहीं कि जरी के फेटे बाँधे दो सज्जन आ गए और उनके सामने रु. १५ अर्पण कर के चले गए ।

देह की ममता

बलवंतराव भागवत कोई कठिनाई आने पर किसी मंदिर में निग्रहपूर्वक जा बैठते थे, लेकिन वहाँ के देवता का उन्हें दृष्टांत होता था कि, "तुम्हारा काम यहाँ नहीं बनेगा। तुम पुणे चले जाओ।" एक बार वे पुणे की विठ्ठलवाडी के गणेश जी के मंदिर में दो दिन जा बैठे और उन्होंने निश्चय किया कि जब तक काम नहीं बनेगा तब तक यहाँ से नहीं जाऊँगा । स्वप्न में गणेश जी ने बताया कि, "तुम्हारा काम यहाँ नहीं बनेगा, तुम पुणे जाओ।" फिर भी वे नहीं गए, डटे रहे, तब वहाँ अनगिन चूहे पैदा हुए और उन्हें काटने लगे । आखिर वे श्रीमहाराज के पास आ गए । उन्होंने पूछा तो झूठ बता दिया कि, "मैं ठाणे से आ गया हूँ।" तब श्रीमहाराज ने कहा, "नास्तिक को आस्तिक बनाना बड़ा मुश्किल है, उसे चूहे भी भगाते हैं ।" आखिर बलवंतराव ने स्वीकार किया कि, "हम आपकी कसौटी पर उतरनेवाले नहीं है । आपके सहवास से कुछ करने की ईर्ष्या होने लगती है, लेकिन देह-ममता छूटती नहीं ।" और सारी बातें बताकर अपनी गलती मान ली। तब श्रीमहाराज बोले, "शरीर की ममता ही दुस्तर माया है । निश्चयपूर्वक और प्रेम से भगवान् का ध्यान करने पर धीरज बढ़ता है । अभ्यास से सब बन सकता है, इसलिए प्रयास करते रहना चाहिए, तब कहीं, कभी न कभी अपने मुकाम पर पहुँचा जा सकता है। "

सन् १९०२ में श्रीमहाराज सात-आठ महीने तक बीमार चले। सेवा के लिए ठाणे से बलवंतराव आ गए । श्रीमाँसाहब को प्लेग के बुखार से घेरा, बलवंतराव को भी प्लेग का बुखार चढ़ा तो घबरा गए और उन्होंने कहा कि, "मैं ठाणे जाता हूँ।" श्रीमहाराज ने उन्हें बहुत रोकना चाहा, लेकिन वे ज़िद पकड़कर चले गए । तब श्रीमहाराज बोले कि, "बलवंत आखिर लौट गया है, अब उसकी खैर दिखाई नहीं देती ।" वही सही निकला और दो-तीन दिन में बलवंतराव चल बसे ।

बलवंतराव के बाद लक्ष्मणराव बापट को भी प्लेग के बुखार ने दबोचा। माँसाहब बीमार थीं ही । श्रीमहाराज भी बवासीर से बदहाल थे । तिस पर बापट

भी बुखार के शिकार हो गए । उनके दोस्तों ने सलाह दी कि घर में और कोई नहीं, इसलिए बापट को प्लेग अस्पताल में पहुँचना अच्छा होगा । श्रीमहाराज ने अटल स्वर में कहा कि, "मेरी हड्डियाँ जब तक बची हैं, तब तक मैं इसे मरने के लिए अस्पताल में नहीं भेजूँगा ।" माँसाहब बिस्तर पर थी, श्रीमहाराज बीमार थे, फिर भी वे खुद साबुदाने की खीर और हलुवा बनाकर बापट को खिलाते थे। दवा देते थे । छठे दिन उन्हें बाई हो गई। वायु के प्रकोप को रोकने के लिए वे बापट को पकड़कर बैठे रहे । जब बापट की पत्नी और रिश्तेदार गाँव से लौटे तब वे उन्हें घर ले गए । वहाँ दुबारा वायु-प्रकोप हुआ । श्रीमहाराज स्वयं उनके घर गए। बापट को बाँध रखा था, उन्होंने उन्हें खोलकर दवा पिलाई और उनकी कृपा से बापट बच गए । बापट की निष्ठा को उन्होंने निभा लिया ।

नया घर

श्रीमहाराज कसबा पेठ का अपना मकान बेचकर किराए के मकान में रहने लगे। सन् १९०३ में उन्होंने शनिवार पेठ में मेहेंदले नाम के सज्जन से घर खरीद लिया और वे वहाँ बस गए । वहाँ एक छोटा-सा शिवालय था । उस घर में देवताओं-साधु संतों की तसवीरें लगाईं । हर रोज तसवीरों को मालाएँ पहनाई जाती थीं । श्रीमहाराज मालाएँ स्वयं बनाते थे । फूलवाले रोज़ फूल लाते थे । एक दिन दुपहर के बारह बजे तक फूल नहीं आए तब चिलचिलाती धूप में श्रीमहाराज नंगे पैर फूल लाने गए और फूल लाकर और मालाएँ बनाकर तसवीरों को पहना गईं। वहाँ उस घर में कुल-धर्म, कुलाचार और उत्सव बड़ी शान से मनाए जाने लगे । घर खपरैल का छोटा था और भक्तजन आने पर तिलभर की जगह नहीं बचती थी। उसकी पश्चिम की ओर खाली जगह थी । उसके मालिक गंगाधरपंत मेहेंदले ने श्रीमहाराज को वह दान में लिख दी ।

श्रीमहाराज नि:स्पृह थे और ख्याति से दूर रहते थे, लेकिन उनके साधुत्व को पहचाननेवाले लोग आ ही जाते थे । तब वे आए हुए लोगों को सामान्य व्यावहारिक, पौराणिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदि विषयों का रहस्य घंटों समझाते थे । कभी कभी वे भक्तजनों की मूर्खता पर झल्ला उठते थे और गालियों की बौछार करते थे । यह झल्लाहट लोगों को सुधारने के लिए ही होती थी ।

कभी कोई दंभी उनकी परीक्षा करने आ जाता था, तो वे क्रोध उतारते थे। उनका क्रोध या उनकी गालियाँ भक्तों के लिए आशीर्वाद बन जाती थीं।

गालियों का वरदान

कल्याण के श्री भिडे नाम के सज्जन श्रीमहाराज के यहाँ आते थे। उनका दत्तू नाम का बेटा बहुत दिनों से संग्रहिणी से बीमार चल रहा था। हड्डियों का कंकाल बचा था। डाक्टर जवाब दे चुके थे। बचने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती थी। उसकी नानी गोदूताई केतकर ने उसे श्रीमहाराज के पास लाने की सोची। वह उसे रेल पर सवार कर के एक दिन दुपहर में श्रीमहाराज के यहाँ पहुँची। वे अभी अभी भोजन कर के लेटे हुए थे। गोदूताई ने उनके दरवाजे पर पेढ़े, फूलों का हार और धोती में लिपटे हुए दत्तू को रखा। श्रीमहाराज उबल पड़े, "तुम गधी हो, बेवकूफ हो। तुम औरतें दूसरों को बदनाम करनेवाली हो। इतनी बुढ्ढी हो गई, फिर क्या अकल मारी गई है? तुम अविश्वासी हो। विश्वास होता तो यहाँ क्यों आती? तुम इस बच्चे को गाड़ी पर सवार कर के ले आई, बाल-हत्यारी हो।" तीखें व्यंगों की बरसात होती रही, लेकिन गोदूताई की श्रीमहाराज पर पूरी निष्ठा थी। वह उनका गुस्सा चुपचाप झेलती रही। आखिर श्रीमहाराज ही चुप हो गए।

श्रीमहाराज की कृपा-दृष्टि पड़ते ही ठंडे पड़े बच्चे के शरीर में गर्माहट आने लगी और उसे गहरी नींद आ गई। गोदूताई ने श्रीमहाराज का स्मरण कर के उसके माथे पर भस्म मली। शाम तक बच्चा ठीक हो गया। श्रीमहाराज की गालियाँ उस बच्चे के लिए वरदान बन गईं।

मेहेंदले ने जगह वापस ली

श्री मेहेंदले ने श्रीमहाराज को कागज़ लिखकर खाली जगह दे दी थी। उन्हें इस बात का अहंकार था। वे कभी कभी श्रीमहाराज के यहाँ आ जाते थे और तर्क-वितर्क उपस्थित कर के चर्चा करते थे। उन्हें लगता था कि इन्हें दान में जगह दी है, तो ये दबकर रहेंगे, लेकिन श्रीमहाराज मुँहफट थे। मेहेंदले उटपटाँग बातें कर के अपना सिक्का जमाना चाहते थे। एक बार उन्होंने कह दिया कि, "ब्राह्मणों को वेदान्त-शास्त्र क्षत्रियों ने सिखाया," तो श्रीमहाराज ने कह दिया

कि, "तुम्हारे बीज अशुद्ध हैं, इसलिए ऐसे कुतर्क तुम्हारे दिमाग में आते हैं।" इसे सुनकर मेहेंदले बड़े अपमानित हो गए और उन्होंने श्रीमहाराज को सबक सिखाने की ठानी। उनका दिया दान-पत्र रजिस्ट्री नहीं किया था, इस मुद्दे को लेकर वे अदालत में गए। मामला हाईकोर्ट तक पहुँचा। मेहेंदले का दावा कानूनन सिद्ध हुआ, उनकी जगह उन्हें लौटाने का फैसला हुआ। लोगों को मेहेंदले की चाल बुरी लगी, खुद मेहेंदले बदला पूरा होने से खुश हो गए, लेकिन श्रीमहाराज को कोई निराशा नहीं छू सकी।

एक भक्त ने उनसे पूछा कि, "आपके पास कर्तुमकर्तुम शक्ति है, तब आप विपक्षी को सबक क्यों नहीं सिखाते?" तब श्रीमहाराज ने कहा कि, "मैंने अपने जीवन में उत्तमोत्तम सुख भोग पाए हैं। उत्कृष्ट कलाकारों, राजा-महाराजाओं की संगति पाई है। सुखोपभोग के लिए पैसा कमाने की हवस थी। उसके चक्कर में कष्ट उठाता रहा। हिमालय में जाकर तपस्या की। एक फकीर से किमियागिरी सीख ली, लेकिन चैन नहीं था। सद्‌गुरु श्रीस्वामी समर्थ के पास पहुँचने पर संतोष हुआ। देह की ममता छूटने के लिए चिंता किए बिना घड़ियाल भरे दह में कूद पड़ा, पहाड़ों से कूद पड़ा। अपने पास की सिद्धियों को परखने का प्रयास किया। जब देखा इससे अहंकार बढ़ता है तब उन्हें छोड़ दिया और देह का प्रारब्ध भोगते हुए जीवन को बिता रहा हूँ। मेहेंदले ने जगह लौटा ली, लेकिन मुझे इसका मलाल नहीं। यहाँ धर्मशालाओं की ज़रूरत ही क्या है? अनेक लोगों ने मंदिर बनाए हैं, जहाँ अब चमगादड़ रहते हैं। धर्मशालाएँ बनवाई हैं, वे वीरान पड़ी हैं। इसलिए इस गोरखधंधे में फँसने की अब कोई ज़रूरत नहीं है।"

बुरा फल है संतों को सताने का

गली में रहनेवाले लोग बेवजह श्रीमहाराज से जलते थे। कुछ नौजवानों को उकसाकर वे उन्हें सताने लगे। गंदी गालियाँ बकना, चीखना-चिल्लाना, घर में धूल फेंकना, हँसी उड़ाना, दरवाज़े पर पत्थर मारना आदि कारनामों से वे श्रीमहाराज को सताने और झुँझलाने की कोशिश करते रहे। लेकिन श्रीमहाराज टस से मस नहीं हुए। एक दिन कुछ बदमाश घर में घुस गए। चीखते और शोरशराबा करते रहे। श्रीमहाराज को गालियाँ दीं। दीपक बुझा दिया। बाहर से मिट्टी, गोबर लाकर घर में फेंका और चले गए। श्रीमहाराज ने उन्हें न रोका, न

गुस्सा दिखाया। वे चुपचाप देखते बैठे रहे। न शिकायत थी, न नफरत। लेकिन माँसाहब झुँझला उठी। उन्होंने कहा कि, "मेरे घर का दिया जिन्होंने बुझाया, उन्हें भगवान् देख लेगा।" आगे चलकर उन शरारती लोगों के जो अगुवा थे, उनकी दुर्गति हो गई। कोई प्लेग का शिकार हुआ, कोई जन्मभर का बीमार हुआ तो कोई अँग्रेजों के खिलाफ साजिश करने के गुनाह में जेल में सड़ने लगा। संत को सताने से वे बरबाद हो गए।

व्यावसायिक सतर्कता

बलवंतराव भागवत और पांडुरंगभट भडकमकर गुज़र जाने के बाद वासुअण्णा भागवत और उनके साले अच्युतराव पानवलकर बारी बारी से आकर सेवा के लिए दो दो महीने रहते थे। रोज़ाना के और उत्सव-त्यौहार के बाज़ार से खरीदारी का काम उन्हींको करना पड़ता था। श्रीमहाराज माल को परख लेते थे, दाम पूछ लेते थे। हिसाब देख लेते थे और कोई न कोई नुक्स निकालकर उन पर वे बरस पड़ते थे। इतना कि वे उन्हें रुला देते थे। कभी उन लोगों के मन में आ जाता था कि क्या पाई-पैसे का हिसाब रखने-देने के लिए हम यहाँ आकर रहते हैं? उनके मन की बात जानकर श्रीमहाराज कहते थे कि, "व्यवहार में सतर्कता बरतनी चाहिए। मैं लाखों रुपया उड़ाकर चैन से बैठा, तुमने मेरा आश्रय किया है तब व्यवहार में तुम्हारा पूरा ध्यान होना चाहिए। इसी ध्यान को पलटकर आसानी से परमार्थ में लगाया जा सकता है।"

श्रीमहाराज की वत्सलता

श्रीमहाराज अपने लोगों पर पुत्रवत् प्रेम करते थे। वे हर दिन लोगों को बातों-बातों में जीवन का रहस्य समझाते थे। उनके खाने-पीने का ध्यान रखते थे। बीमार होने पर उनकी चिंता करते थे। संकट के समय उन्हें बचाते थे। रात में सोने से पहले वे देख लेते थे कि सब को बिस्तर-उढ़ौना मिला है या नहीं। न होने पर अपना शाल उन्हें उढ़ा देते थे। वे सच्चे अर्थो में उनके लिए गुरुमाई थे, जो उनके लौकिक और पारमार्थिक कल्याण की चिंता नित्य ढोते थे।

* * *

१०. नासिक का दत्तमंदिर

नासिक के विष्णुपंत स्मार्त नाम के सज्जन श्रीमहाराज के शिष्य थे। वे पेन्शनर थे। उनके मित्र थे गौतम शास्त्री। दोनों चाहते थे कि बुढ़ापे में कोई सेवा बने। उन्होंने श्रीमहाराज को बताया तो उन्होंने नासिक में भगवान् दत्त का मंदिर बनाकर दत्त-सेवा करने की आज्ञा दी। विष्णुपंत स्मार्त के लिए मंदिर का खर्चा उठाना मुश्किल था। थोडा-सा चंदा जुटाया गया। गौतम शास्त्री की नासिक में कालाराम मंदिर के पास खाली जमीन थी, जो उन्होंने मंदिर के लिए दे दी। लेकिन खर्चा कैसे पूरा हो?

श्रीमहाराज को कठिनाई बताई तो उन्होंने कर्ज़ा लेकर मंदिर बनाने की आज्ञा दी। मंदिर बन गया। विष्णुपंत ने श्रीमहाराज को स्वयं नासिक पधारकर अपनी उपस्थिति में विग्रह की प्रतिष्ठापना कराने की प्रार्थना की। वे नए घर में आने के बाद कहीं भी नहीं जाते थे, लेकिन नासिक गए। वैशाख शुद्ध सप्तमी शके १८३० (सन् १९०८) के दिन भगवान् श्रीदत्त की नए मंदिर में प्रतिष्ठापना की और श्रीमहाराज वहाँ ७-८ महीने रहकर दत्त जयंति मनाकर पुणे लौटे।

नासिक पहुँचने पर विष्णुपंत स्मार्त ने स्वागत कर के कहा कि, "यह मंदिर आपका है और इसका पूरा भार आप पर है।" श्रीमहाराज ने कहा कि, "दत्त का प्रारब्ध उनके साथ और मेरा प्रारब्ध मेरे साथ।" मंदिर की ऊपरी मंजिल पर जाकर उन्होंने अपना डेरा जमाया।

श्रीमहाराज के नासिक आने पर भक्तजन वहाँ आने लगे। इस बीच उस वर्ष नासिक में कुंभ मेला भी आ गया। श्रीमहाराज की ख्याति फैलती गई और लोग बड़ी संख्या में दर्शन करने आते गए। जो कुछ चढ़ावा आ जाता था, वह सारा वे विष्णुपंत स्मार्त को सौंप देते थे। वे जब पुणे से आए थे तब उनके पास २५ रु. थे। विष्णुपंत स्मार्त अपना सब कुछ मंदिर बनाने में लगा चुके थे। रोज़ लोग बड़ी संख्या में भंडारे में आ जाते थे, लेकिन श्रीमहाराज की कृपा से कभी

कमी महसूस नहीं हुई। सभी तीज-त्यौहार धूम से मनाए गए। जो कर्ज़ चढा था, वह भी चुकाया गया और जब दत्त-जयंति के बाद श्रीमहाराज पुणे लौटने लगे तब उनके पास २५ रु. ही बचे थे।

नासिक में दत्त-मंदिर बना लेकिन अब उसके प्रबंध की चिंता थी। विष्णुपंत स्मार्त वृद्ध बन चुके थे। उन्होंने श्रीमहाराज से पूछा कि, "मेरे बाद मंदिर का प्रबंध कैसे किया जाय?" श्रीमहाराज के प्रमुख शिष्य उपस्थित थे। उन्होंने सब को संबोधित कर के पूछा, "नासिक का मंदिर कौन सँभालेगा?" कोई आगे नहीं बढ़ा, तो विष्णुपंत के दामाद दामोदर त्रिंबक देशपांडे ने कहा कि, "आपकी आज्ञा हो तो कर लूँगा।' श्रीमहाराज ने उन्हें अपने पास बिठाकर और अपना पुत्र मानकर उन्हें अपने हाथों से शक्कर खिलाई। उनका नाम एकनाथ रामचंद्र बीडकर रखा गया और वे भी अपने को एकनाथ बीडकर कहलाने लगे।

दामोदर देशपांडे अपनी माँ से मिलने फलटण चले गए, इस बीच श्रीमहाराज समाधिस्थ हो गए। किसीने उन्हें सूचित नहीं किया। अखबार में पढ़ने पर वे पुणे आए, तो सब ने उनकी उपेक्षा की। वे फलटण लौटकर नौकरी ढूँढने लगे। नौकरी मिल जाती थी, लेकिन कुछ लोग शिकायत करते थे कि यह झूठा नाम लगाता है, तो छूट जाती थी। तब वे परेशान होकर श्रीसंत एकनाथ महाराज के पैठण गए। वहाँ श्रीमहाराज ने सपने में प्रकट होकर उन्हें नासिक जाने की आज्ञा की। उनके आने से उनके ससुर विष्णुपंत स्मार्त को खुशी हो गई। वहाँ उन्हें नौकरी भी मिल गई। उन्होंने नासिक मंदिर का पूजा-पाठ आदि संभाल लिया। विष्णुपंत स्मार्त ने मंदिर और सारी चीजें दामोदर देशपांडे के नाम लिख दीं। वे श्रीमहाराज का नाम नहीं लगा सके, क्योंकि कुछ लोगों ने आपत्ति उठाई, लेकिन उन्होंने अपने को उनका वारिस माना। वे उनका गोत्र लगाकर उनके कुलाचारों का पालन करते थे।

कुछ दिनों के बाद विष्णुपंत स्मार्त और उनकी पत्नी भी गुज़र गई। देशपांडे फलटण से अपनी माता-बहनों को ले आए। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी-विष्णुपंत स्मार्त की लड़की भी गुज़र गई। उन्होंने गृहस्थी और मंदिर की परंपरा बनाए रखने के लिए दूसरा विवाह किया। वे मंदिर में नित्य और नैमित्तिक पूजा-पाठादि कार्य यथासांग निभाते रहे। बाद में उनका तबादला अहमदनगर में हो

गया, तब किसीको जिम्मेदारी सौंपकर वे अपना कर्तव्य निभाते रहे। आखिर पेन्शन लेकर वे नासिक आ गए। उन्होंने दत्त-मंदिर का ट्रस्ट बना दिया।

दामोदर देशपांडे ने अपना कर्तव्य पूरा करते हुए सन् १९६९ में देहत्याग किया। उनके बेटे डॉ. दिनकर देशपांडे पवई में आइ. आइ. टी. में थे। वे अब पेन्शन लेकर नासिक लौटे हैं और मठ-मंदिर की सेवा कर रहे हैं।

* * *

श्रीबीडकर महाराज की भविष्य-वाणियाँ

१. श्रीमहाराज के एक भक्त ने पूछा कि, "देश की स्वतंत्रता के लिए साधु-संत मदद नहीं देते, तब हमारा स्वतंत्र होना क्या कभी मुमकिन होगा? होगा तो कब और कैसे?"

तब श्रीमहाराज ने बीसवीं शती के प्रारंभ में कह दिया था, "ये अँग्रेज़ लोग बिना फटाखा फोड़े हिंदुस्तान छोड़कर चले जाएँगे। इसीको हमारी मदद समझो।"

यह भविष्य-वाणी सही निकली।

२. श्रीमहाराज ने उसी समय दूसरी भविष्य-वाणी की थी कि, "अँग्रेज़ हमारे अपनेपन के साथ-साथ धन, संपत्ति और वैभव छीनकर ले जाएँ तो कभी न कभी हम उसे कमाकर ला सकेंगे। लेकिन इस अँग्रेज़ी राज में हमारी सत्यनिष्ठा अर्थात् आर्यसंस्कृति चली जाए. तो उसे लौटा लाना असंभव है।"

इस भविष्यवाणी को आज हम अनुभव कर रहे हैं।

११. श्रीमाँसाहब : अभिन्न पतिव्रता

सौ. जानकीबाई माँसाहब श्रीबीडकर महाराज की जीवनभर सच्ची अनुगामिनी बनी रहीं। वे एक अच्छे खाते-पीते घर से आई थीं। धार्मिक और श्रद्धालु स्त्री थीं। बीडकर कुल में आने पर वे सास की और पति की प्यारी बन गईं।

श्रीमहाराज का रहन-सहन समृद्धि के साथ बदल गया, लेकिन उन्होंने गृहस्थी जीवनभर निभा ली। उन्होंने पति की इच्छा पर अपने को सौंप दिया था। श्रीमहाराज कभी व्यापार के बहाने, कभी विलासिता के आकर्षण में डूबे रहते थे, लेकिन माँ साहब ने कभी झगड़ा नहीं किया। उन्होंने गृहस्थ-धर्म के पालन में और धर्म-कर्म में अपने को डुबो दिया।

श्रीमहाराज सद्गुरु के कृपा-पात्र बन गए तो संसार से विरक्त हो गए। उन्होंने अपने को प्रारब्ध पर छोड़ दिया तब घर में तंगी थी। माँसाहब कभी कभी पति के निकम्मेपन पर झुँझलाकर ताने देती थी। फिर भी उन्होंने गृहस्थी को निभा लिया।

माँसाहब को तीर्थ-यात्राएँ अच्छी लगती थीं। श्रीमहाराज जब उन्हें तीर्थ-यात्राओं के लिए ले जाते थे, तब उन्हें प्रसन्नता होती थीं। घर में तीज-त्यौहार और धार्मिक उत्सवों को वे आनंद-विभोर होकर मनाती थीं।

पुत्र-संतान न होने से वे दुःखी होती थीं। कोई बच्चा गोद लेने के लिए वे तरसती थीं। लेकिन किसीको गोद नहीं लिया गया। वामन नारायण बिबीकर नाम के लड़के को श्रीमहाराज घर ले आए थे, लेकिन वह असमय ही चल बसा। माँसाहब ने श्रीमहाराज के शिष्यों-भक्तों को ही अपनी संतान मानकर अपना वात्सल्य उनपर बरसाया।

माँसाहब का जीवन श्रीमहाराज के प्रति समर्पित था। वे उनसे बहुत प्रेम

रखती थीं। जब श्रीमहाराज बिना बताए कहीं चले जाते थे, तो वे बेचैन हो उठती थीं। श्रीमहाराज जब अचानक नर्मदा-परिक्रमा के लिए चले गए, तब वे खोज करते हुए ओंकारेश्वर पहुँच गईं और उनका पीछा करते हुए परिक्रमा के मार्ग पर बहुत दूर बढ़ती गईं। पत्थरगीर गुसाईं, टीलेवाले गुसाईं आदि के समझाने पर वे लौट आईं और प्रतीक्षा करती रहीं। श्रीमहाराज नर्मदा-परिक्रमा से ओंकारेश्वर लौटे। खबर मिलते ही वे ओंकारेश्वर पहुँच गईं और उन्हें घर ले आईं। इसी प्रकार जब वे चुपचाप आलंदी-देहू चले गए तब उनके लौटने की सूचना मिलते ही वे चिंचवड चली गईं और उन्हें घर ले आईं।

कभीं कभी वे श्रीमहाराज से झगड़ती और रूठ जाती थीं। लेकिन उनके प्रति उन्हें गहरा प्रेम था। एक बारगी वे उनसे रूठकर दूर एक मंदिर में जा बैठीं। श्रीमहाराज ने कई बार श्री दत्तोपंत निरोखेकर के साथ बुलावा भेजा, तब भी वे नहीं लौटीं। आखिर उन्होंने कहला भेजा कि, "तुम नहीं आओगी तो मैं खुद तुम्हें लिवाने आऊँगा।" माँसाहब सुनते ही बोल उठीं कि, "नहीं नहीं, चिलचिलाती धूप में उनके पैर जल जाएँगे। मैं ही आ जाती हूँ।" वे फौरन चली आईं।

माँसाहब भगवान् विठ्ठल-रुक्मिणी की बड़ी भक्त थीं। अनन्य भक्ति के कारण वे स्वयं अधिकारिणी बन गईं थीं। श्रीमहाराज के साथ रेल से नासिक जाते समय उनके डिब्बे में एक काला-साँवला कद्दावर आदमी श्रीमहाराज से मिलने के बहाने आ गया। उन्होंने पूछा कि, "क्या काम हैं भई?" उसने कहा, "मैं आपसे मिलने दौड गाँव से आ रहा हूँ।" उन्होंने कहा, "ठीक है, आ जाओ।" तब वह बोला कि, "आपसे बाद में मिलूँगा। पिछले डिब्बे में बैठता हूँ।" वह निकला तो माँसाहब ने उसे नमस्कार किया। एक भक्त ने पूछा कि, "आपने किसे नमस्कार किया?" तो वे बोलीं कि, "विठ्ठल को।" लोगों ने उसे ढूँढा। भीड़ नहीं थी लेकिन वह नहीं मिला। स्वयं भगवान् विठ्ठल दर्शन देने आए थे, और माँसाहब ने उन्हें पहचानकर नमस्कार किया था।

माँसाहब ने अपने औघड़ फकीर बने पति की गृहस्थी को अंत तक निष्ठापूर्वक निभाया। वे पतिव्रता आर्य स्त्री का आदर्श थीं और सुहागिनी बनी रहते हुए श्रीमहाराज से पहले ही श्रावण शुद्ध षष्ठी शके १८३३ (सन् १९११) के

के दिन मियादी बुखार से परलोक सिधार गईं। उनकी अंत्येष्टि श्रीमहाराज के उत्तराधिकारी आण्णासाहब बहुतुले ने की।

श्रीसद्गुरु वासुदेवानंत सरस्वती ऊर्फ बाबा महाराज सहस्रबुद्धे श्रीबीडकर महाराज के शिष्योत्तम थे। श्रीबीडकर महाराज ने अपनी आध्यात्मिक धरोहर श्रीबाबा महाराज को सौंपी थी। श्रीबाबा महाराज श्रीमाँसाहब को अपनी जन्मदात्री माँ मानते थे और वे भी अपने लाड़ले बेटे पर वात्सल्य बरसाती थीं। सन् १९११ में जब माँ साहब ने देह-त्याग किया, तब श्रीबाबा पुणे में नहीं थे, उन्हें पत्र द्वारा समाचार मिले, तो माँसाहब के परलोक सिधारने के दसवें दिन वे पुणे में पहुँचे। माँसाहब के चले जाने से श्रीबाबा महाराज इतने आहत हो गए थे कि दु:ख में गुमसुम रहे। माँसाहब को तिलांजलि देकर सब लौटे तो श्रीबीडकर महाराज ने सब को भोजन से निपटने की आज्ञा की। श्रीबाबा महाराज से भोजन करने के लिए कहा तो उन्होंने कहा कि, "आप इसी वक्त मुझे माँसाहब के दर्शन कराइए, तभी मैं भोजन ग्रहण करूँगा।" श्रीबीडकर महाराज ने उन्हें हर तरह से समझाया लेकिन उन्होंने नहीं माना। हारकर श्रीमहाराज उबल पड़े। वे गालियों की बौछार करने लगे। उन्होंने फटकारा कि, "बेवफूक, तुम्ही इतनी भी अक्ल नहीं कि मरे हुए लोग दुबारा नहीं लौट आते?" लेकिन श्रीबाबा महाराज अपनी बात पर अड़े रहे। श्रीमहाराज अपने गुस्से के लिए मशहूर थे। उन्होंने औरों से कहा कि, "तुम भोजन कर लो। यह रावसाहब नादान है। उसके लिए मत रुको।" खुद भी भोजन करने नहीं गए।

सब का भोजन होने पर श्रीमहाराज ने कहा कि, "अंदर तीन पत्तल परोसो और सब बाहर हो जाओ। मैं उसे भोजन कराऊँगा।" पत्तल परोसे गए, तब श्रीमहाराज ने रावसाहब से कहा कि, "चलो, तुम्हें माँ के दर्शन करना है न? उसके साथ भोजन करोगे न?" श्रीबाबा महाराज अंदर जाकर पीढ़े पर बैठ गए। श्रीमहाराज ने रसोईघर का दरवाजा बंद कर दिया और वे खुद श्रीबाबा जी के पास बैठ गए। श्रीबाबा जी ने श्रीमहाराज के पैर पकड़ लिए और वे गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे कि, "मुझे माँसाहब के दर्शन कराइये।" श्रीमहाराज अपने भोले शिष्य का हठ देखकर गद्गद हो गए। उन्होंने उसे प्यार से गले लगाया और सहलाते हुए

कहा, "रावसाहब मेरा मोती दाना है। उसकी बात मुझे रखनी होगी।" उन्होंने माँसाहब को पुकारकर कहा, "देखिए, यह आपका पगला बेटा आपके बिना भोजन नहीं करता। अब आप ही आकर इसे समझाइए।"

श्रीमहाराज के आवाहन पर स्वयं माँसाहब सगुण रूप लेकर ज़री की साड़ी पहनी हुई और गहनों से सजी हुई जगन्माता के रूप में प्रकट हो गईं। वे श्रीबाबा जी के पास बैठ गईं। वे उनके पैरों से लिपटकर आँसू बहाने लगे। माँसाहब ने उन्हें सहलाकर चुप किया। उन्होंने श्रीबाबा जी को अपने हाथों खिलाया। भोजन होने पर उन्होंने कहा, "पगले, मरे हुए को क्या बुलाया जा सकता है? फिर तुम ऐसा पागल हठ क्यों करते हो? माया को ओढ़कर अज्ञान में सुख खोजने का तुम्हारा यह हठ सद्गुरु की कृपा पा जाने पर तुम्हें शोभा नहीं देता। पंचभूतात्मक देह को कभी न कभी छोड़ना पड़ता है। उसके परे आत्मा का अविनाशी रूप है उसमें ध्यान लगाना चाहिए।" इस तरह उपदेश देकर और आशीर्वाद देकर वे तिरोधान हो गईं। श्रीबाबा श्रीबीडकर महाराज के चरणों में लोटकर क्षमा याचना करने लगे। उन्होंने श्रीबाबा को उठाकर अपने गले लगाया और कहा, "रावसाहब, आज मैंने अपना सर्वस्व तुम्हें दे दिया है। अब हम दोनों में कोई द्वैत नहीं बचा, तुम्हारा पूरा अहंकार मैंने अपना लिया है।"

देह-त्याग के बाद भी प्रकृति का अटल नियम को तोड़कर माँसाहब अपने बेटे के लिए सगुण रूप में प्रकट हुई थीं और उन्होंने अपने हाथों उसे प्यार से खिलाया था।

धन्य है श्रीबीडकर महाराज की कृपालुता, धन्य है श्रीमाँसाहब की वत्सलता और धन्य है श्रीबाबा सहस्रबुद्धे महाराज की भक्ति-भावुकता।

* * *

१२. सो कत हेरी जाइ ?

माँसाहब ने सन् १९११ में देह-त्याग किया। उसके बाद श्रीमहाराज अपने लोगों को व्यावहारिक और पारमार्थिक उपदेश करने लगे। वे चाहते थे कि अपने लोग अपनी उन्नति कर लें, इसी बात की चिंता वे अंत तक करते रहे। कभी वे कहते थे कि, "हम अब जाएँगे।" कभी कहते थे कि, "मैं आज ही नहीं जा रहा।" लोगों के चिंतित होने पर वे कह देते थे कि, "रामकृष्णादि अवतारी पुरुषों को भी जाना पड़ता है, इसलिए यह देह कभी न कभी जाएगी ही।" वे अपने लोगों को आश्वासित करते थे कि, "तुम लोग व्यर्थ नहीं जाओगे। निश्चय से, प्रेम से और सतर्कता से सब कुछ पूर्णत्व को प्राप्त होगा। विश्वास के साथ नित्य धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिए। सभी कुछ देनेवाला वही एक परमात्मा है, उसे छोड़कर संसार में दूसरा कुछ भी नहीं है।"

श्रीमहाराज को बवासीर की पुरानी बीमारी थी, जो उन्होंने नर्मदा-परिक्रमा में एक ब्राह्मण को दुःख-मुक्त करने के लिए वह बीमारी अपने ऊपर ओढ़ ली थी। बड़ा दर्द होता था, इसलिए वे हमेशा लेटे हुए चुपचाप सह लेते थे। कभी खून बहकर थकान हो जाती थी। आखिर उन्हें पेशाब की भी तकलीफ होने लगी। बीच में "अंबे, अंबे, सद्गुरु, सद्गुरु," पुकार उठते थे। दि. ३१ मार्च १९१३ की रात में उन्हें घबराहट होने लगी। डॉ. भागवत सुबह आ गए। उन्होंने दवा भेज देने की बात कही, तो श्रीमहाराज बोले कि, "आप जानते ही हैं कि हमें दवा से (अल्कोहलवाली) परहेज़ है।" डाक्टर भागवत ने उन्हें बताया कि, "मैं पावडर ही भिजवाता हूँ। गरम पानी के साथ लीजिए।" श्रीमहाराज अल्कोहलवाली अँग्रेज़ी दवा कभी नहीं लेते थे। वे भ्रुकुटि में ध्यान लगाए लेटे रहे। मंगलवार १ अप्रैल १९१३ के दिन (फाल्गुन कृष्ण दशमी, शके १८३४) दुपहर के कोई १२ बजे उनकी प्राण-ज्योति अनंत ब्रह्म में विलीन हो गई। उन्होंने

संन्यास नहीं लिया था, उनका अंत्येष्टि संस्कार दूसरे दिन किया गया, जिससे उनके शिष्य-भक्त आ सके। मुंबई, ठाणे, कल्याण, नासिक आदि स्थानों से भी लोग आ गए।

किसीको पता भी नहीं चला। कभी उन्होंने लोगों से कहा था कि, "हम कब जाएँगे, इसका पता भी तुम लोगों को नहीं चलेगा।" और ऐसा ही हुआ। बूँद समानी समुंद में सो कत हेरी जाई ?

श्रीमहाराज ने किसीको गोद तो नहीं लिया था, लेकिन अण्णासाहब बहुतुले को अपना उत्तराधिकारी माना था। वे सन् १९०३ लेकर श्रीमहाराज की सेवा के लिए मठ में रहते थे। अण्णासाहब ने ही माँसाहब की अंत्येष्टि की थी। उन्होंने श्रीमहाराज की भी की। श्रीमहाराज ने सात ट्रस्टियों पर अपने मठ की जिम्मेदारी सौंपी थी। अण्णासाहब ने श्रीमहाराज के पश्चात् ठीक १२ वर्ष बड़ी कुशलता से श्रीबीडकर महाराज का मठ चलाया। उन्होंने निष्ठापूर्वक पूजा-पाठ, त्यौहार आदि की मठ की परंपरा चलाई और सन् १९२५ में अपने सद्गुरु की पुण्यतिथि के दिन देह-त्याग किया। उन्होंने पाँच ट्रस्टियों का डीड बनाया था। उन लोगों ने मठ को आगे चलाया। अब नए ट्रस्टी हैं। उन्होंने मठ को नया रूप दिया है।

* * *

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अंध।
महादुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥
गुरु समान दाता नहिं, जाचक सिष समान ।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान ॥
गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहिं।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठ नहिं ठौर ॥
- *महात्मा कबीर*

१३. धन्य दाता

श्रीबीडकर महाराज अपने शिष्यों-भक्तों के कल्याण के लिए सजग थे। कभी वे प्रेम से समझा-बुझाकर, कभी कहानी बताकर, कभी गुस्सा उतारकर, कभी गालियाँ देकर, तो कभी दृष्टांत देकर अपने लोगों को लौकिक और पारमार्थिक बातों का रहस्य समझा देते थे। लोगों के लिए अपने पास का सब कुछ देने के लिए तैयार रहते थे। हर कोई अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयास करता था, पर खरा उतरना आसान नहीं था, लेकिन वे दयालु अपनी ओर से लोगों को जीवन का गुर समझानेवाले गुरु थे। जैसे -

दामोदर देशपांडे

फलटण (जि. सातारा) के रहनेवाले दामोदर त्रिंबक देशपांडे बचपन से ही श्रीबीडकर महाराज के संपर्क में आए। श्रीदत्तात्रेय के अवतार अक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ के एक प्रमुख शिष्य हरिकाका नाम के विदेही सत्पुरुष फलटण में रहते थे। उनकी समाधि फलटण में बाणगंगा नदी के पार बनी है। समाधि के पीछे हरिकाका की तसवीर टँगी हुई है। दामोदर देशपांडे बचपन में हर रोज़ सुबह समाधि के दर्शन करते थे और अपने अध्यापक बालाभाऊ निरोखेकर (दत्तोपंत निरोखेकर के भाई) के यहाँ जाते थे। एक दिन दामोदर समाधि के दर्शन करने गया तो तसवीर में हरिकाका के स्थान पर धोती पहने हुए और पलथी मारे दूसरे कोई साधु नज़र आए। आँखें मलकर देखा तो हरिकाका ही नज़र आए। नमस्कार कर के दुबारा सिर उठाया तो फिर अपरिचित दिखाई दिए। ऐसा तीन-चार बाद हुआ। चमत्कृत मन से वे अपने अध्यापक बालाभाऊ के घर आ गए। वे श्रीबीडकर महाराज के शिष्य थे। सद्गुरु के दर्शन कर के वे पुणे से अभी अभी लौटे थे। वे अपने साथ सद्गुरु महाराज की तसवीर ले आए थे। उसे देखते ही दामोदर देशपांडे को पहचानने में देर नहीं कि हरिकाका के स्थान पर दिखाई दिए, ये वे ही साधु हैं।

उन्होंने अध्यापक बालाभाऊ को बता दिया। बालाभाऊ ने बता दिया कि, "अरे, ये पुणे के श्रीरामानंद महाराज बीडकर हैं। तुम्हारा उनके साथ कोई ऋणानुबंध दिखाई देता है। लगता है उन्होंने तुम्हें बुलाया है। अगली बार तुम मेरे साथ पुणे आ जान।"

कुछ दिनों के बाद अध्यापक बालाभाऊ के साथ दामोदर देशपांडे श्रीमहाराज के पास गए तो उन्होंने बड़े प्यार से उनकी पूछताछ की और पूछा कि, "तुम मेरे पास रहोगे क्या?" माता से अनुमति मिलने पर वे पुणे में श्रीमहाराज के पास रहे। उनकी शिक्षा-दीक्षा उन्होंने की। मैट्रीक बनने के बाद श्रीमहाराज ने नासिक के विष्णुपंत स्मार्त की लड़की के साथ उनका विवाह रचा। उन्होंने दामोदर को अपना बेटा मान लिया था। उन्होंने उनका नाम एकनाथ रामचंद्र बीडकर रखा था। आगे चलकर विष्णुपंत स्मार्त ने नासिक में दत्त मंदिर बनाया, जिसकी जिम्मेदारी श्रीमहाराज ने दामोदर को सौंप दी।

एक बार दामोदर देशपांडे फलटण गए हुए थे, तो इधर श्रीमहाराज पुणे में समाधिस्थ हो गए। किसीने दामोदर को खबर तक नहीं दी। समाचार-पत्र से उन्हें जब यह खबर मिली, तो वे दौड़ते हुए पुणे आ गए। उन्होंने पूछा कि, "मुझे क्यों नहीं सूचना दी?" तो वहाँ के लोगों ने कहा कि, "तुम होते कौन हो?"

श्रीमहाराज के पुणे के मठ में अब दामोदर देशपांडे के लिए कोई स्थान नहीं था। माँ, बहनें और पत्नी-पूरे परिवार की जिम्मेदारी थी और उनके गुज़ारे का कोई ज़रिया नहीं था। कहीं नौकरी मिल भी जाती तो लोग शिकायत करते थे कि यह अपना नाम झूठा लगता हैं। नौकरी छूट जाती थी। तंग आकर एक दिन दामोदर देशपांडे श्रीसंत एकनाथ महाराज के पैठण गाँव में पहुँच गए। वे श्रीएकनाथ महाराज के घर के पास सोए थे कि रात में सपना आया। श्रीमहाराज ने स्वप्न में प्रकट होकर कहा कि, "पागलपन मत करो, नासिक जाओ, सब ठीक होगा।"

श्रीमहाराज की आज्ञा पर दामोदर देशपांडे नासिक आ गए। विष्णुपंत स्मार्त को प्रसन्नता हुई। नासिक में ही उन्हें नौकरी मिल गई। वहीं उन्होंने घर बसा लिया। वे निष्ठापूर्वक दत्त-मंदिर में सेवा करने लगे।

सन् १९२५ में श्रीमहाराज की पुण्यतिथि थी। दामोदर देशपांडे को

श्रीमहाराज ने स्वप्न में आकर बताया कि, "इस साल पुणे में मेरी पुण्यतिथि मनाई नहीं जाएगी, तुम यहीं नासिक में मनाओ ।" दामोदर देशपांडे ने नासिक में पुण्यतिथि मनाई। महाभोज हुआ। पुणे के मठ को सूचना भेजी, सब चकित रह गए क्योंकि पुण्यतिथि के दिन ही अण्णासाहब बहुतुले परलोक सिधार गए थे, इसलिए वहाँ पुण्यतिथि मनाई नहीं जा सकी थी।

इस अवसर पर और एक विलक्षण बात हुई। पुण्यतिथि के समय अधिक लोग आ गए। बाज़ार से उधार माल मँगाकर दुगना भोजन बनाना पड़ा। कुछ दिनों के बाद दूकानदार उधार वसूल करने घर आ गया। पैसा कहाँ से आए? दामोदर देशपांडे ने मन में कहा कि, "श्रीमहाराज की आज्ञा से सारा प्रबंध किया था, वे ही अब पत राखेंगे।" उन्होंने श्रीमहाराज की गद्दी की चादर झटकी तो बाईस रुपए दस आने नीचे गिरे। धरना दिए बैठे दूकानदार से उधारी पूछी तो उसने बताया कि बाईस रुपए दस आने। उधारी चुका दी। श्रीमहाराज की लीला।

देशपांडे का पुत्र राहुल

दामोदर देशपांडे का बड़ा पुत्र राहुल ५-६ वर्ष की आयु में ही गुज़र गया। वह बड़बड़ करनेवाला और जिद्दी था। वह बार बार बीमार पड़ता था। एक दिन रात के दस बजे उसने हठ पकड़ा कि मुझे मुरलीधर कृष्ण की तसवीर चाहिए। सन् १९३० के पहले की बात है। उन दिनों बिजली नहीं थी। रात के सात-साढ़े सात बजे ही दूकानें बंद हो जाती थीं। उसे तरह-तरह से समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह अड़कर चिल्लाता रहा, जब उससे पूछा कि, "इतनी रात गए तसवीर कहाँ मिलेगी?" तो उसने बताया कि, "गंगा (गोदावरी) के किनारे मिल जाएगी।" दामोदर देशपांडे वहाँ गए, तो एक आदमी तसवीरें बेचते टिमटिमाता दिया जलाकर बैठा है। उससे तसवीर खरीदने पर पूछा कि, "तुम इतनी रात गए अकेले क्यों बैठे हो," तो उसने कहा कि, "किसीने उसे बता रखा था कि तसवीर लेने के लिए कोई आ जाएगा, तब तक रुको।" उस नन्हे बच्चे राहुल में यह जानने की शक्ति कैसे आई थी?

क्या श्रीमहाराज की लीला इसके पीछे थी? नासिक के दत्त मंदिर में कोई

पुणे से आ जाता था, तो राहुल चुनींदा गालियों की बौछार करता था। वे गालियाँ सिर्फ श्रीमहाराज के मुँह से ही निकलती थीं। गालियाँ देते समय राहुल का लहज़ा भी श्रीमहाराज की तरह हो जाता था। एक बार दामोदर देशपांडे ने कहा कि, "आखिर तुम हो कौन?" उसने कहा कि, "हम कोई भी हों, तुम्हें क्या फ़र्क पड़ता हैं?" बीमारी में एक दिन उसने दत्त की पादुकाएँ मँगाई और उन्हें अपनी छाती पर रखकर प्राण त्यागे।

दिनकर देशपांडे

दामोदर देशपांडे ने काशी-यात्रा के समय काशी विश्वेश्वर से पुत्र के लिए मनौती माँगी थी। उसके अनुसार सन् १९३१ में उन्हें पुत्र-लाभ हुआ। उसका नाम दिनकर ऊर्फ विश्वनाथ रखा गया। उसे भाऊ भी कहते थे। मनौती पूरी करने के लिए दिनकर का जनेऊ काशी जाकर किया गया। समारोह के समय जब अंतरपाट धरा गया, दामोदर देशपांडे ने देखा कि वहाँ शिवलिंग के साथ स्वयं श्रीबीडकर महाराज खड़े हैं।

इसी दिनकर देशपांडे को १९४१ में बहुत बुखार चढ़ा। वह दो दिन बेहोश था। पिता दामोदर देशपांडे उसके सिरहाने बैठे जप कर रहे थे कि रात के कोई दो बजे उन्हें दिखाई दिया कि देवगृह में रखी तसवीर में से श्रीमहाराज प्रकट हुए और बाएँ हाथ से धोती सँभालते हुए दिनकर के पास आ गए। उन्होंने अपना दाहिना हाथ उसके माथे पर रखा और वे ओझल हो गए। दिनकर फौरन होश में आ गया। सपने में उसने देखा था कि कोई अक्राल-विक्राल देवी अपना मुँह फैलाकर उसे निगलने आई थी कि श्रीमहाराज ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। उसी समय से दिनकर की बीमारी ठीक होने लगी।

अटल निष्ठा

दत्तोपंत निरोखेकर के साथ श्रीमहाराज के पास मुकुंद मोघे भी सेवा के लिए रहते थे। नासिक के राजद्रोह के षड्यंत्र के मामले में पुलिस मोघे को पकड़कर श्रीमहाराज के यहाँ से ले गई। उस समय निरोखेकर वहाँ नहीं थे। लौटने पर उन्हें मालूम हुआ तो वे घबरा उठे कि, "अब पुलिस मुझे भी उठाकर ले जाएगी और पीट-पीटकर मनचाहा जवाब लेगी।" उनकी हालत देखकर श्रीमहाराज

ने कहा कि, "तुम्हारा मन बेचैन है। तुम चार-आठ दिन मुंबई जाओ।" तब वे अपने मित्र भागवत के यहाँ मुंबई गए। कुछ दिनों के बाद बाबासाहब कर्वे को पता चला कि श्रीमहाराज को पकड़ने का वारंट ज़ारी हुआ है। उन्होंने इसकी जानकारी श्रीमहाराज को जाकर बताने के लिए कहा। निरोखेकर मुंबई से पुणे आए। सीधे श्रीमहाराज के घर न जाकर उनके भक्त आण्णासाहब गुप्ते के यहाँ पहुँचे। वे बोले, "मैं शाम को ही श्रीमहाराज के पास गया था। उन्होंने कहानी बताई कि -

एक वन में भगवान् शिव जी का एक पुराना मंदिर था। एक धनी आदमी वहाँ आकर शिवलिंग की षोडशोपचार से पूजा करता था। उसके बाद दुपहर के कोई बारह बजे एक चरवाहा मुँह में पानी भरकर आता था। वह पूजा उतारकर उस पर कुल्ला करता था और 'शंभो हर हर' पुकारकर निकल जाता था। एक बार भवानी शिव जी से बोली, "आपको घिनौनी बातें ही अच्छी लगती हैं। वह धनी आदमी उत्तम पूजा करता है, उसपर आप प्रसन्न नहीं होते और वह गंदा चरवाहा आप पर मुँह का जूठा पानी डालता है, फिर भी आप उसे सज़ा नहीं देते।" तब शिव जी बोले, "मैं केवल शुद्ध बातों को ही अपनाता हूँ। कुछ ही दिनों में तुम इसे जान जाओगी।"

कुछ दिनों के बाद वह धनी आदमी पूजा के लिए आ गया कि इतने में मंदिर के ऊपर कड़कड़ाहट हुई। ऊपर से पत्थरों के टुकड़े गिरने लगे। मंदिर गिर जाएगा, इस डर से वह आदमी भाग गया। दुपहर के बारह बज गए तो वह चरवाहा आ गया। कड़कड़ाहट बढ़ गई और बड़े बड़े पत्थर गिरने लगे। तब उसने सोचा, "शिवलिंग टूट जाएगा तो मैं कल किसकी पूजा करूँगा? चाहे कुछ भी हो जाए, मुझे इसे बचाना ही होगा" और वह शिवलिंग से लिपटकर पड़ा रहा। कहानी पूरी कर के श्रीमहाराज बोले कि, "निष्ठा ऐसी होनी चाहिए।"

आण्णासाहब गुप्ते की बात सुनकर निरोखेकर जान गए कि श्रीमहाराज ने यह कहानी मेरे लिए बताई है। वे श्रीमहाराज के पास आ गए और उन्होंने उन्हें वारंट की बात बताई। श्रीमहाराज ने चैन से चाय पी ली और कहा कि, "हमारा क्या? यहाँ रहने के बदले जेल में रहेंगे।" जो खबर डरावनी थी, उसे सुनकर वे बिल्कुल न डगमगाए। किसीको कुछ भी नहीं हुआ और मोघे भी बरी कर दिए

गए। अटल निष्ठा ही मनुष्य को संकटों से पार कराती है।

गंगूबाई की गुरुनिष्ठा

नासिक में श्रीनारायण महाराज चांदोरकर नाम के पहुँचे हुए सिद्ध थे। वे गोदावरी के किनारे विदेही नग्नावस्था में पड़े रहते थे। गंगूबाई नाम की एक तवायफ उनकी शिष्या थी। वह रोज़ उनके पास आकर उन्हें अच्छे गालीचे पर बिठाती थी और घंटाभर उन्हें अपनी सुरीली आवाज में भक्ति-पद सुनाती थी।

एक दिन नासिक का अँग्रेज़ कलेक्टर अपनी बीवी के साथ नदी किनारे घूमने आया तो नग्नावस्था में वहाँ पड़े श्रीनारायण महाराज पर उसकी नज़र पड़ी। उसने उन्हें नासिक से कहीं दूर ले जाकर रखने का हुक्म दिया। श्रीनारायण महाराज को ले जाकर चांदोरी गाँव में रखा गया। गंगूबाई अपने गुरु के नित्य दर्शन से वंचित हो गई। तब वह अपने मालिक के साथ ताँगे पर सवार होकर हर बृहस्पतिवार के दिन चांदोरी जाती थी और उनकी सेवा करती रही। उन्होंने उसको तरह-तरह से परखा। कभी वे उठकर उसकी गोद में बैठ जाते और पाखाना करते थे। गंगूबाई बड़ी भक्ति से उन्हें साफ कर के बिठाती थी और पद सुनाती थी।

एक बार श्रीनारायण महाराज ने उससे पूछा कि, "तुम हमारे पीछे क्यों पड़ी हे? तुम क्या चाहती हो?" उसने कहा कि, "मुझे आपका संग चाहिए।" सुनते ही महाराज ने उसके मुँह पर ज़ोरदार तमाचा जड़ा दिया कि वह बेसुध हो गई। उसका मालिक पानी लाने दौड़ने लगा तो महाराज ने उसे पकड़कर बिठा दिया और कहा, "आज से तुम्हारा इसके साथ का रिश्ता खत्म हो गया। चाहो तो तुम इसकी सेवा करो। कल इसी समय वह होश में आएगी।" महाराज की आज्ञा के अनुसार वह उसे लेकर नासिक आ गया और उसकी सेवा करता रहा।

उन श्रीनारायण महाराज के समाधिस्थ हो जाने बाद श्रीबीडकर महाराज एक बार नासिक आए थे। उनके दर्शन के लिए गंगूबाई दत्त के मंदिर में गईं। तब श्रीमहाराज ने उसे बताया कि, "गंगूबाई, जब तक मैं यहाँ हूँ तब तक रोज़ प्रसाद के लिए आती रहो।" उनकी आज्ञा के अनुसार वह रोज़ आती थी और भोजन के बाद श्रीमहाराज के पास बैठकर पान-तमाखू खाकर चली जाती थी।

एक दिन श्रीमहाराज ने अपने लोगों से कहा कि, "तुम लोग पूछते हो कि

परमार्थ में हम आगे क्यों नहीं बढ़ते? आओ, तुम्हें दिखाता हूँ।" वे ऊपरी मंजिल पर गए। सब लोग वहाँ गए। गंगूबाई पान खाकर तमाखू फाँकने को थी कि श्रीमहाराज ने पूछा कि, "गंगूबाई चांदोरी गई थी क्या?" सुनते ही वह फूट पड़ी। फफकते हुए उसने कहा कि, "चांदोरी में अब क्या खाक बचा है?" मन हलका होने पर वह आँखें पोंछकर चली गईं। तब श्रीमहाराज ने लोगों से कहा कि "देखो, कैसा है गुरु-प्रेम। जब गुरु का नाम सुनते ही आँसू बरसाने लगोगे तभी परमार्थ में आगे कदम बढ़ेगा।"

अहंकार का अन्न

श्रीमहाराज नासिक के दत्त मंदिर में जब थे, तब रोज कोई भक्त नैवेद्य करता था। एक दिन गोडबोले नाम के सज्जन का नैवेद्य था। उनके बड़े भाई स्वयं श्रीस्वामी समर्थ के शिष्य थे, इसलिए उन्हें गर्व था कि मैं स्वामी का शिष्य हूँ, तब श्रीमहाराज में क्या रखा है? इस भाव के आते ही श्रीमहाराज को कँपकँपी भर आई, किसी भी तरह से वह कम नहीं हो रही थीं। श्रीमहाराज मानो अपने आप से ही बातें करने लगे। लगता था कि वे किसीसे बातें कर रहे हों। कोई उन्हें भोजन करने से मना कर रहा था। श्रीमहाराज कहते थे कि, "वह तो अपना ही है, भोजन लेने से क्या होगा?" श्रीमहाराज तर्क कर रहे थे, लेकिन उन्हें भोजन से मना किया जा रहा था। आखिर उनके मुँह से निकला कि, "यह मेरी छाती पर बैठा है, मुझे उठने नहीं देगा।"

भोजन की तैयारी हो गईं। गोड़बोले श्रीमहाराज को बुलाने आ गए। उनकी कँपकँपी रुक नहीं रही थी। उन्होंने कहा कि, "मुझसे भोजन किया नहीं जा सकेगा। तुम लोग कर लो। चाहते ही हो, तो नैवेद्य का थोड़ा-सा दूध ले आना।" वे दूध का घूँट पीकर सो गए। लगता था कि स्वयं श्रीस्वामी समर्थ ने उन्हें मना किया था और सद्‌गुरु की आज्ञा उन्हें माननी पड़ी। श्रीमहाराज सद्‌गुरु को छोड़ अन्य किसीकी आज्ञा क्या मानते? गोडबोले के झूठे अहंकार के कारण उनका अन्न लेने से सद्‌गुरु ने श्रीमहाराज को मना कर दिया।

मांत्रिक फकीर

श्रीमहाराज जब नासिक में थे, तब एक दिन सुबह छज्जे पर खड़े थे।

नीचे सड़क से एक फकीर जा रहा था। उसने श्रीमहाराज को देखो तो आगे पीछे कदम करते हुए अड़ने लगा। उन्होंने अपने लोगों को भेज कर उसे बुला लिया। किसीने पूछा कि, "फकीर जी, आपके पास कुछ तंत्र-मंत्र हो तो बताओ।" उस पर वह बोला, "तुम तो बच्चा हो, तुमको क्या बताना? बाबा देखेंगे तो बताऊँगा।" तब श्रीमहाराज के कहने पर उसने एक कोरे कागज पर पेन्सिल से कुछ लिखकर उसे फर्श पर रखा। फिर उसे रूमाल से ढँककर कुछ मंत्र पढ़े और रूमाल को हटा दिया। कागज़ नाचते हुए लोगों की ओर बढ़कर पीछे हटता था। कई बार ऐसा हुआ, लेकिन वह कागज़ वहाँ किसी आदमी को छू न पाया। उस फकीर ने दो-तीन बार ऐसा करने की कोशिश की, लेकिन उसमें कामयाबी नहीं मिली। आखिर उसने श्रीमहाराज से कहा कि, "हमारा जादू तुम्हारे वास्ते नहीं हैं।" और उसने उन्हें सलाम किया। श्रीमहाराज ने उसे कुछ पैसे देकर बिदा किया। तब उन्होंने बताया कि, "वह कागज़ अगर किसीको छू जाता तो उसकी गर्दन मरोड़ी जाती।" उन्होंने अपने प्रभाव से उस फकीर के जादू को बेअसर कर दिया था।

जंगली महाराज

पुणे में जंगली महाराज नाम के सिद्ध हो गए उनके नाम पर आज बड़ा-रास्ता बना है। वहाँ पहले घना जंगल था और उसमें वे रहते थे, इसलिए उन्हें जंगली महाराज नाम मिला। एक दिन श्रीमहाराज वहाँ गए। जंगली महाराज ने उन्हें परखने के लिए मंत्र फूँका तो श्रीमहाराज का पूरा शरीर अकड़ गया। वे वहीं लेटकर अपने आराध्य श्रीमारुति जी का चिंतन करते गए। रातभर वे गहरी नींद सोकर सुबह जागकर बैठ गए। जंगली महाराज सुबह उन्हें देखकर चकित रह गए और उन्होंने श्रीमहाराज को शाबाशी दी। तब से वे उनका आदर करने लगे।

भक्तों को दर्शन के लिए बुलाया

ठाणे के केशवराव गुप्ते श्रीमहाराज के भक्त थे। श्रीमहाराज समाधिस्थ होने के तीन दिन पहले गुप्ते के स्वप्न में प्रकट हुए। उन्होंने कहा, "तुम दर्शन चाहते हो, तो आ जाओ, मैं चला।" गुप्ते ने उस सपने की ओर ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन फिर से सपना आया। फिर भी उन्होंने ध्यान दिया। तब तीसरे दिन आ गया, तो वे पुणे दौड़े। ऐसा ही अनुभव श्रीमती गोदूताई केतकर को मिला। उसके

सपने में आकर श्रीमहाराज ने बताया, "मैं चला, तुम क्या बैठी हो?"

फकीर की बात

श्रीमहाराज की गिरती हालत से दत्तोपंत निरोखेकर अनमने हो गए थे। उस समय नासिक के अवधूत बाबा पुणे आए थे। उनसे मिलकर मन को शांति पाने के लिए निरोखेकर गए, लेकिन वे नहीं मिले। रास्ते में एक फकीर मिला। उसने कहा कि, "तुम्हारे बाबा ने अच्छा किया। पका हुआ फल तुम्हारे लिए पेड़ पर कब तक रहता? अल्ला सब कुछ अच्छा करनेवाला है।" उसकी बात से निरोखेकर के मन को चैन मिला।

बंगाली साधु

श्रीमहाराज जब नासिक में थे, तब उनके पास एक बंगाली साधु आते थे। वे ग्यारह-बारह बजे आ जाते थे और वहीं अन्न-ग्रहण करते थे। वे उन्मनी अवस्था में रहते थे। जब उनकी पत्तल परोसी जाती थी, तब वे पत्तल की सारी चीजें मिलाकर खा जाते थे और पत्तल को सामने के एक गुसाई के द्वार पर फेंक देते थे। वह गालियाँ देता, चीखता, चिल्लाता था। वे उसका मज़ा उठाते हुए हँसते, नकल उतारते हुए चले जाते। देह पर कभी लंगोटी होती, तो कभी चिथड़े, कभी नया धोती-कुर्ता-कोट भी होता था। वे सिद्ध पुरुष थे, लेकिन उन्होंने पागलपन ओढ़ लिया था। श्रीमहाराज के पास आने पर वे चुपचाप रहते थे। उनके सामने बड़बड़ करते तो मना करने पर घुटनों में सिर छुपाए घंटों चुपचाप बैठे रहते थे। कभी दुपहर में न आते तो शाम को आ जाते थे, श्रीमहाराज फल-पेढ़े जो भी रहता उन्हें दे देते थे। शाम को अँधेरा छाने लगता तो वे वन में गुम हो जाते थे और योगाभ्यास करते थे। श्रीमहाराज बड़े प्रेम से उनकी पूछताछ करते थे। वे अपने शिष्यों-भक्तों से कहते थे कि, "भगवान् तुम लोगों के लिए ही यहाँ घर बैठे ऐसे आदमी को ले आता है।"

राखनहार गुरु

दत्तोपंत (द. ल.) निरोखेकर श्रीमहाराज के निष्ठावान भक्त थे। वे नामी वकील थे, लेकिन उन्हें डॉक्टर भी कहा जाता था। उन्हें दत्तोपंत या आण्णासाहब भी कहते थे। वे उस जमाने के बी. ए.एल्.एल्. बी. थे। वे पढ़ाई के लिए अपने

मित्र श्री भागवत के यहाँ ठाणे गए थे। उन्होंने किराए पर कमरा ले लिया था। दुर्भाग्य से पड़ोस में चोरी हो गई, और निरोखेकर पर शक होने लगा। पुलिस ने आकर भागवत के यहाँ पूछताछ की। निरोखेकर घबरा उठे कि अब पुलिस पीटेगी। उस रात उन्हें सपना आया कि उनके पीछे एक साँप आ रहा है, और वे भाग रहे हैं। इतने में एक आदमी लाठी लेकर आ गया और उसने साँप को भगा दिया। उस आदमी ने सफेद धोती पहनी थी और उसी धोती का आधा हिस्सा शरीर पर ओढ़ लिया था।

दत्तोपंत आगे चलकर भागवत के साथ श्रीमहाराज के पास गए, तब उन्होंने देखा कि ये वे ही साँप को खदेड़नेवाले सज्जन हैं। इसके पहले उन्होंने कभी श्रीमहाराज को देखा तक नहीं था। वे उनसे प्रभावित होकर उनके भक्त बन गए। उन्होंने सन् १९०२ की रामनवमी को श्रीमहाराज से अनुग्रह पाया और अपने को निष्ठापूर्वक उनके चरणों में सौंप दिया। एल्.एल्. बी. बनने पर श्रीमहाराज की आज्ञा पर मुंबई में उन्होंने एक हाईस्कूल में संस्कृत अध्यापक की नौकरी की, फिर वे उन्हीं के कहने पर नौकरी छोड़कर सेवा के लिए श्रीमहाराज के आश्रय में आ गए। श्रीमहाराज के कठोर अनुशासन में गुरु-सेवा कैसी बनेगी? दृढ़ निष्ठा कोई हँसी-खेल नहीं। इस चिंता में एक रात दत्तोपंत को सपने में एक साधु ने उपदेश किया कि, "गुरु-सेवा बड़ी कठिन बात है। साँप जब बिल में प्रवेश करता हैं और हम उसे पकड़ने के लिए खींचने लगते हैं, तब उसकी पूँछ टूट जाएगी, लेकिन वह बाहर नहीं निकलेगा। मन की इतनी दृढ़ता हो तभी गुरुसेवा बनेगी।" दत्तोपंत श्रीमहाराज की सेवा में आ गए। उनके जिम्मे बाज़ार का काम था। श्रीमहाराज खरीद में कोई न कोई नुक्स निकालकर इतना फटकारते थे कि रुला देते थे। लेकिन दत्तोपंत अपनी निष्ठा के कारण गुरु के प्यारे बन गए। श्रीमहाराज ने ही १९०८ में उनका विवाह और गर्भाधान संस्कार किया। दत्तोपंत की जिम्मेदारियाँ बढ़ गईं। कोई नौकरी-आमदनी नहीं थी। भविष्य की चिंता दिन-रात सता रही थी। उनका मन बेचैन था। मन में विचार उठा कि सब कुछ छोड़कर भाग जाऊँ। रात में सपने में उन्होंने देखा कि वे तुलसी बाग के राम मंदिर में गए हैं और वहाँ राम जी के सामने स्वयं श्रीमहाराज खड़े हैं। दूसरे दिन से वे

श्रीमहाराज की आज्ञा पाकर श्रीराम जी के दर्शन के लिए जाने लगे।

दत्तोपंत रात में बीड़ा कूटकर श्रीमहाराज को देते थे। एक दिन उनके मन में विचार उठा कि श्रीसंत एकनाथ महाराज अपने गुरु श्रीजनार्दन स्वामी को बीड़ा कूटकर देते थे, तो पिकदानी ही पी लेते थे। मेरा इतना अधिकार तो नहीं है, लेकिन श्रीमहाराज अपने मुँह का बीड़ा दे देंगे, तो मैं खा लूँगा। निरोखेकर के मन की बात श्रीमहाराज ताड़ गए। वे बोले, "कहाँ एकनाथ और कहाँ तुम? करनी के बिना कथनी व्यर्थ है।"

श्रीमहाराज देर में जागकर दुपहर में कोई ११ बजे बैठक में आ जाते थे। तब उनके सामने पूजा से बचे हुए फूल रखे जाते थे। वे उन फूलों की माला बनाकर किसी तसवीर को पहनाने को बता देते थे। एक दिन पूजा के बाद फूल ही नहीं बचे तो श्रीमहाराज ने निरोखेकर को बताया कि जाओ, "कनेरी के फूल ले आओ।" उन्होंने बताया कि, "मैं गया था, लेकिन अब वहाँ कोई फूल नहीं है।" "जैसा बताया, वैसा करो।" आखिर दत्तोपंत वहाँ गए, तो ढेरों फूल मिल गए। तब वे धोती में भरकर फूल ले आए। श्रीमहाराज बोले, "क्यों फूल थे नहीं न? अब कहाँ से आए? ऐसा ही होता है। जब भगवान् देगा, तब इतना देगा कि तुम ले भी नहीं सकोगे।" आगे चलकर दत्तोपंत निरोखेकर पुलिस प्रॉसिक्युटर बन गए। भगवान् ने उन्हें भरपूर दे दिया।

एक बार दत्तोपंत को मलेरिया हो गया और बुखार बहुत दिनों तक चलता रहा। बेहद कमज़ोरी आ गईं। ऐसे में राम नवमी के लिए कुछ लोगों के साथ वे पुणे आने लगे। बीच में देहू जाने की सोची, लेकिन दत्तोपंत का बुखार चढ़ गया। उन्होंने साथियों को आगे भेज दिया और खुद श्रीसंत तुकाराम महाराज के निर्वाण-स्थान में जा बैठे। तबीयत बिगड़ गई। उन्हें लगा कि अब मैं मर रहा हूँ। इतने में आवाज आ गई कि, "मरोगे नहीं, कर्म-भोग भोग रहे हो।" यह सद्‌गुरु की ही आवाज थी, क्योंकि आस-पास दूर-दूर तक कोई नहीं था। गुरुनिष्ठा दृढ़ हो, तो कहीं भी गुरु-कृपा का छत्र आश्वस्त बनता है।

दत्तोपंत निरोखेकर ने अपने दो भतीजों का जनेऊ संस्कार श्रीसंत ज्ञानेश्वर समाधि-स्थान आलंदी में कराया। वे वहाँ के एक पुरोहित के यहाँ उतरे, लेकिन दो दिन में उस पुरोहित ने एकादशी के कारण उन्हें आलंदी के श्रीनृसिंह सरस्वती

(श्रीस्वामी समर्थ के शिष्य) के मंदिर के सामनेवाली धर्मशाला में रख दिया। दत्तोपंत ने श्रीनृसिंह सरस्वती से मन में प्रार्थना की कि, "अब तक हम श्रीज्ञानेश्वर महाराज के आश्रय में थे, अब आपके आश्रय में आए हैं।" दूसरे दिन ही उनकी २-३ साल की लड़की को बेहद बुखार चढ़ा। डॉक्टर ने कह दिया कि, "बुखार क्या है, समझ में नहीं आता।" दत्तोपंत को भी जोरों का बुखार आया। उस बेहोशी में उन्हें सुनाई दिया कि, "आलंदी में दूसरे किसी का अधिकार नहीं।" सुनते ही अपनी गलती जानकर वे श्रीज्ञानेश्वर के मंदिर गए और पूजा कर के उन्होंने क्षमा-याचना की। बस, उनका और उनकी बेटी का बुखार पाँच मिनट में उतर गया। सद्‌गुरु ने दत्तोपंत की गलती को सुधार दिया।

एक बार दिसंबर की छुट्टियों में दत्तोपंत निरोखेकर सद्‌गुरु की सेवा और सान्निध्य के लिए पुणे आए। सद्‌गुरु की गद्दी साफ करने लगे। दो-चार दिन के बाद उन्हें कुछ अज़ीब सा महसूस होने लगा। गद्दी साफ करने में आलस घेरने लगा और मन में वे देवताओं को भद्दी गालियाँ देने लगे। वे बेचैन हो उठे। इस विचित्र हालत में उन्होंने लौट जाने की सोची। श्रीमहाराज की आज्ञा पाकर वे निकले। वे उन्हें नमस्कार करने लगे तो उन्होंने कहा, "दूर से नमस्कार करो, मेरे पैरों को मत छुओ।" आधी रात में रेलगाड़ी थी। गाड़ी में दत्तोपंत को झपकी आ गई उन्होंने देखा, एक काला-कलुटा पुरुष उनके शरीर से बाहर निकला और कुछ समय पास में खड़ा होकर ओझल हो गया। तबसे उनका मन स्वच्छ हो गया। पास की बुराइयाँ सद्‌गुरु-कृपा से निकल गईं। निष्ठा होनी चाहिए, फिर सद्‌गुरु अपने शिष्य को सभी संकटों में बचाता है।

अन्य साधु-सत्पुरुष

उस ज़माने के नासिक के दिगंबर योगी गोपाल बाबा, शेगाँव के गजानन महाराज, सोनगीर के नानक महाराज, भुसावल की खालम्मा, पलूस के धोंडी बाबा, शिरडी के साई बाबा, नासिक के अवधूत बाबा, मौला बाबा, त्र्यंबकेश्वर के जहागीरदार बाबा आदि साधु-जन श्रीमहाराज के अधिकार को जानते थे। जब श्रीमहाराज का कोई भक्त उनके दर्शन करने जाता था, तब उनके मुँह से निकलता था कि, "तुम्हारा दाता धन्य है।"

* * *

१४. गुणसागर गुरु

भगवान् श्रीदत्तात्रेय के अवतार अक्कलकोटनिवासी श्रीस्वामी समर्थ जी के महान् शिष्योत्तम प. पू . श्रीरामानंद बीडकर महाराज जी अवतारी पुरुष थे । धर्म-ग्लानि दूर करने के लिए, साधु-सज्जनों की रक्षा के लिए और भक्ति का उन्मेष दिखाने के लिए भगवान् अपनी विभूतियों के साथ सगुण चरित्र प्रकट करते हैं । अनेक चढ़ाव-उतारों से भरा और अनेक विशेषताओं से पूर्ण श्रीबीडकर महाराज का चरित्र अद्वितीय है । उनका चरित्र देखकर लगता है कि "नर करनी करे तो नर का नारायण बन जाता है।" उनमें अनंत गुण छिपे थे, जो मनुष्य के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। हरि अनंत है और उसकी कथाएँ भी अनंत होती हैं। श्रीबीडकर महाराज के सगुण चरित्र की कुछ प्रमुख विशेषताओं को समझ लेना सहृदय भक्तों के लिए उपादेय होगा ।

व्यक्तित्व

श्रीमहाराज ऊँचे और इकहरे कदवाले, गौर वर्ण थे । आँखें पानीदार थीं। देखनेवाला आप ही आप उनसे प्रभावित हो जाता था । अच्छे दिनों में उनकी पोशाक बढ़िया होती थी। वे रेशमी वस्त्र पहते थे। सिर पर साफा, कोट और धोती। इत्रों के शौकीन थे । इस प्रभावी व्यक्ति के धनी श्रीमहाराज धनी-मानी लोगों में और राजा-महाराजाओं के दरबारों में जाते थे, तब अपनी मीठी बातें और वाक्-चतुरता के कारण सभी के आकर्षण के केंद्र बन जाते थे। सभी उनकी इज़्ज़त करते थे। उनकी बातों में हँसी-मज़ाक का भी पुट होता था ।

लेकिन उन्होंने फकीरी अपनाई, तब सब कुछ छोड़कर वे अलिप्त हो गए। वे सारा ताम-झाम छोड़कर एक धोती पहनकर अधनंगे ही रहने लगे। उस धोती की चुन्नट को ही वे शरीर पर या सिर पर ओढ़ लेते थे । फिर भी अपने प्रभावी व्यक्तित्व और अपनी शक्तियों के कारण भक्तजन चाहे गरीब हों या अमीर

हों, गृहस्थ हों या साधु-संन्यासी-सभी उनसे प्रभावित होते थे।

यहाँ तक कि हिंस्र पशु भी उनके रोब में आते थे। नर्मदा-परिक्रमा के अवसर पर डरवना शेर भी उनकी पैनी नज़र से दब कर चला गया। नर्मदा के दह में वे कूद पड़े तो अनेक हिंस्र घड़ियाल भी उनके पास फटक नहीं सके । ओंकारेश्वर के ओसारे में पंचमुखी नाग उनसे लिपट गया, लेकिन उनके "जाओ" कहने पर चुपचाप चला गया। भालचंद्र पर्वत (देहू) की तलहटी में बसे प्राचीन शिव मंदिर में उनके पहुँचने पर काला नाग वहाँ से चला गया। नर्मदा किनारे त्रिशूल पाणि की झाड़ियों में जब रास्ता सूझ नहीं रहा था, तब एक भेड़िए ने उन्हें राह दिखाई ।

उदारता

श्रीमहाराज के मन में बड़ी उदारता थी । उनके घर में अनेक आश्रित आते थे, उन सब का बड़े प्रेम से वे पालन करते थे । कहीं वे बाहर गाँव जाते थे, तो घर के सब लोगों के लिए उपहार में कुछ न कुछ लाकर बाँट देते थे। उस समय कोई हाज़िर न हो तो उसका उपहार बचाकर रखते थे। उनकी उदारता में समदृष्टि थी ।

अनेक भक्त-शिष्य उनके घर में सेवा के लिए या मिलने के लिए आ जाते थे, उन सब का यथोचित आतिथ्य होता था। रात में सोने से पहले वे देख लेते थे कि सब को बिस्तर-उढ़ौना मिला है या नहीं। उन्होंने लाखों रुपये कमाए और उदार हृदय से उड़ा दिए । ल. ग. बापट प्लेग से बीमार थे, उस समय माँ साहब भी बिस्तर पर पड़ी थीं, खुद भी बीमार होने पर भी श्रीमहाराज अपने हाथों हलुआ, खीर बनाकर बापट को खिलाते थे ।

उन्होंने अपने घर में कृष्णा बिबीकर, दामोदर देशपांडे, अण्णासाहब बहुतुले जैसे लोगों को ला रखा था। उनकी पढ़ाई का इंतज़ाम किया था। उन्होंने देशपांडे का और दत्तोपंत का निरोखेकर का विवाह रचा था ।

मातृभक्ति

श्रीमहाराज बड़े मातृभक्त थे। वे माँ की किसी बात का उल्लंघन नहीं करते थे। उन्हें अनेक अच्छे घरानों से रिश्ते आए थे, लेकिन उन्होंने माँ की पसंद

की हुई लड़की से ही विवाह किया। वे अपने भक्तों से कहते थे कि माता-पिता की सेवा से भगवान् प्रसन्न होते हैं। भक्त पुंड़लीक की मातृ-पितृ भक्ति से भगवान् विठ्ठल प्रसन्न हो गए।

धार्मिकता

श्रीमहाराज परम धार्मिक थे। कुलाचार, पूजा-पाठ, अभिषेक, लघुरुद्र, उत्सव आदि वे बड़े प्रेम से मनाते थे। भालचंद्र पहाड़ की तलहटी के शिव मंदिर में उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा लघुरुद्र कराया था। घर में पूजा-पाठ ब्राह्मण द्वारा होता था। श्रीमहाराज बचे फूलों की अपने हाथों मालाएँ गूँथकर तसबीरों को पहनाने के लिए देते थे। अन्न-संतर्पण में उनकी बड़ी आस्था थी। उनके यहाँ अतिथियों के लिए भोजन का प्रबंध होता था, अनेक त्यौहारों पर महाभोज होते थे। नासिक में दत्त मंदिर की स्थापना के समय अनेक दिनों तक अन्न-संतर्पण चला था।

बाह्य आड़ंबर की अपेक्षा मन की धार्मिकता को वे बड़ा मानते थे। मन की भक्ति-भावना न हो, तो वे किसी भी धार्मिक कर्म को कोरी कवायद मानते थे। वैराग्य धारण करने के बाद उन्होंने इसी सच्ची धार्मिकता को अपनाया था। वेदों की रक्षा करनेवाले ब्राह्मणों को वे पूज्य मानते थे।

भक्त-वत्सलता

श्रीमहाराज अपने शिष्यों-भक्तों के कल्याण की नित्य चिंता ढोते थे। वे सब अपना ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण साध्य करें, इसलिए उन्हें व्यावहारिक बारीकियाँ समझाते थे। बाज़ार से माल कैसे खरीदें? उसे कैसे परखे? मोल-तोल कैसे करें? मामुली सब्जी खरीदने में सावधानी कैसे बरतें? आदि सारी बातें वे समझा देते थे। गलती होने पर डाँट-फटकारकर गालियों की बौछार कर देते थे कि सुननेवाला रो पड़ता था। अपने लोगों के अवगुण और दोष देखकर उन्हें गुस्सा आ जाता था।

अपने भक्तों के खान-पान-आराम आदि सुविधाओं का वे बड़ा खयाल रखते थे। अपने शिष्य श्रीबाबा महाराज का हठ को पूरा करने के लिए परलोक सिधारी श्रीमाँसाहब को उन्होंने साकार प्रकट कराया था। भक्तों के लिए वे गुरुमाई थे। वे उन गुरुओं में से थे, जिनके बारे में महात्मा कबीर ने कहा है -

गुरु कुम्हार सीख कुंभ है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।

भोगी-त्यागी : हद छाँडि बेहद भया

अपनी मेहनत से और भाग्य की कृपा से श्रीमहाराज ने धंधे में लाखों रुपए कमाए। उन पर पैसा कमाने की हवस सवार हुई थी, लेकिन जो कमाया वह मेहनत और ईमानदारी के बल पर कमाया, किसीको धोखा देकर नहीं। सराफे का और गंधी का कारोबार किया। यहाँ तक कि किमिया भी हासिल की। इतना सारा पैसा कमाकर उसे ऐश करने में उड़ा दिया। वे कहा करते थे कि, "मैंने ऐसे ऐसे भोग भोगे हैं कि तुमने ऐसे भोगों का वर्णन कथा-उपन्यासों में भी पढ़ा न होगा।" नाच-गाने जैसे शौक उन्होंने अपने जीवन में किए, उनका लुत्फ उठाया। उसके लिए लोगों की बदनामी सही, तंगी का दर्द झेला।

लेकिन सद्गुरु की कृपा पाते ही वे इन सब से हटकर फकीर बन गए। गुरु के कहने पर किमिया भी छोड़ दी। उन्होंने जहाँ भोगों की हद कर दी, वहाँ त्याग की भी। वहाँ उन्हें कोई न मलाल हुआ, न हिचकिचाहट। फकीरी में भी उनका मन रमा। वे मस्तमौला बनकर एक धोती लेकर आत्मानंद में डूबे रहे। जो धोती पहनते थे उसी का हिस्सा ओढ़ लेते थे। नर्मदा परिक्रमा में बेहद भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी झेलते रहे। न शिकवा न शिकायत। वे त्याग में भी हद छाँडि बेहद बन गए। भोगी से त्यागी, रागी से विरागी और मोही से निर्मोही बनने में उन्हें कोई देर नहीं लगीं। महाठगिनी माया के बंधन उन्होंने एक झटके में तोड़ दिए। जितनी उत्कटता से उन्होंने भोग भोगा, उतनी ही उत्कटता से त्याग भी किया और सब कुछ त्यागने पर फिर कभी माया को पास फटकने नहीं दिया।

मोह के क्षण

श्रीबीडकर महाराज के जीवन में अच्छे दिनों में अनेक मोह के क्षण आ गए और उस मोह में वे डूबते-उतरते रहे। पैसे के मद में भोग भी भोगे, बदनामी भी सही। लेकिन सद्गुरु का अनुग्रह पाते ही बड़ी सहजता से उन्होंने मोह के जाल से अपने को मुक्त कर दिया। नर्मदा-परिक्रमा के अवसर पर एक महंत की सौंदर्य-राशि कन्या ने उन्हें मंत्र-वश करने की कोशिश की। उनसे विवाह की

कामना प्रकट कर के अपने को और अपने पिता के समृद्ध मठ को उनके चरणों में समर्पित करना चाहा, लेकिन श्रीमहाराज ज़रा भी विचलित नहीं हुए। जब वे श्रीज्ञानेश्वर जी के दर्शन के लिए आलंदी गए थे, तब एक अनिंद्य सुंदरी ने आतिथ्य स्वीकारने की प्रार्थना की, लेकिन वे टस से मस नहीं हुए। इसी प्रकार देहू में भी तुकाराम भक्त की दूसरी पत्नी ने उन पर डोरे डालने की कोशिश की, लेकिन श्रीमहाराज निर्द्वंद्व बने रहे। विरागी जीवन अपनाने के बाद कामिनी की कामना उन्हें कभी छू नहीं सकी। गृहस्थ होते हुए भी उनका मनोनिग्रह उनके चरित्र को ऊँचाइयों पर पहुँचा देता है।

अदम्य साहस

जब भी कोई चुनौती श्रीमहाराज के सामने आ जाती थी तब उनमें अदम्य साहस फूट पड़ता। निड़रता और सहनशीलता के कारण वे किसी भी साहस को सहज भाव से झेल लेते थे। अक्कलकोट में जब वे श्रीसद्गुरु का पाद-संवहन कर रहे थे तो अचानक श्रीस्वामी समर्थ के घुटनों के बीच भयंकर नाग प्रकट होकर फुफुकार उठा। फिर भी श्रीमहाराज निर्भय बनकर सद्गुरु की सेवा करते रहे। उसे देखकर श्रीस्वामी समर्थ ने झल्लाकर कहा कि, "तू बड़ा जिन्न, राक्षस है।" उनके इस साहस से प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें तमाचा जड़ाकर शक्तिपात से दीक्षा दी। सद्गुरु ने जब गुरु-दक्षिणा में किमियागिरी छोड़ने की माँग की, तो साहस के साथ उसे स्वीकार किया। सद्गुरु ने उन्हें नर्मदा-परिक्रमा की आज्ञा दी, तो नि:संग बनकर सर्दी-गर्मी, धूप-बारिश और कठिनाइयों-संकटों की परवाह किए बिना परिक्रमा के लिए चल पड़े। अनेक मुसीबतों का सामना करते हुए वे बढ़ते गए। कठोर भूख-प्यास सताती रही। चिलचिलाती धूप में नंगे पैर तपती रेत में और नुकीले पत्थरों पर चलते गए।

पत्थरगीर गुसाईं ने गाँजे की चिलम पेश की तो ऐसा कश लगाया कि शोला उठा। हठी भक्त को चंद्रशेखर बाण देने के लिए घड़ियाल भरे दह में कूद पड़े। नागवाले ओसारे में सो गए। गया में चंडू की चिलम का कश लगाया। ऐसे ऐसे अनेक कृत्य उनके अदम्य साहस और अपार सहनशीलता का परिचय देते हैं।

दयालुता

श्रीमहाराज अपने भक्तों के प्रति बड़े दयालु थे। श्रीमहाराज पराई पीर को देख पसीज जाते थे। नर्मदा किनारे बवासीर की पीड़ा से तड़पनेवाले गुजराथी ब्राह्मण को देख वे दु:खी हुए और उन्होंने उसकी बीमारी अपनाकर उसे रोग-मुक्त किया। उस बीमारी का दु:ख वे जीवनभर झेलते रहे।

गोदूताई केतकर अपने मरणोन्मुख नाती को लेकर श्रीमहाराज के पास आ गई। उसे देखकर उन्होंने गालियाँ दे दीं, लेकिन उस बच्चे की हालत देखकर वे द्रवित हुए और उन्होंने उस पर कृपा-दृष्टि डाली। वह चंगा बन गया।

लक्ष्मण गणेश बापट श्रीमहाराज के मठ में ही प्लेग से सख्त बीमार हो गए। उन्होंने कृपालु बनकर उनकी सेवा की। अंत में उन्हें मौत के मुँह से बचाया।

संसार के प्राकृत गुणों की सीमा होती है, श्रीबीडकर महाराज उस सीमा को तोड़कर गुणातीत बने थे। अनंत गुण-संपन्न सद्गुरु बने थे।

* * *

श्रीरामानंद उवाच

शरीर की ममताही दुस्तर माया है। निश्चयपूर्वक और प्रेम से भगवान् का ध्यान करने पर धीरज बढ़ता है। अभ्यास से सब बन सकता है, इसलिए प्रयास करते रहना चाहिए, तब कहीं कभी न कभी अपने मुकाम पर पहुँचा जा सकता है।

१५. निहचल पद पाया

सत्पुरुषों द्वारा समादृत

श्रीमहाराज मन:शांति के लिए गुरु की खोज में जब चले, तब अक्कलकोट के श्रीस्वामी समर्थ उनके लिए राजमहल की दीवार से कूदकर उन्हें दर्शन देने बाहर निकले । उन्हें देखकर उन्होंने कहा कि, "आम गदराया हैं।" अंत में श्रीस्वामी समर्थ ने उन्हें शक्तिपात के द्वारा दीक्षा दे दी।

उसके बाद नर्मदा परिक्रमा के समय एक गुफा में एक सिद्ध पुरुष मिले । उन्होंने उन्हें बड़े प्रेम से दो दिन अपने पास रखा । श्रीमहाराज का सच्चा परिचय मिलने पर नर्मदा किनारे की पहाड़ी के गुसाईं, पत्थरगीर बाबा और सानेस्वामी और पुणे में मुरलीवाले गुसाईं ने उनका बड़ा आदर किया । हुपस्वामी, अवधूत बाबा, शेगाँव के गजानन महाराज, पुणे के जंगली महाराज, नासिक के बंगाली साधु, गोपाल बुवा, काशी के कृष्णानंद और अजगर स्वामी, शिरड़ी के साईं बाबा, त्र्यंबकेश्वर के ज़हागीरदार आदि तत्कालीन साधु-सत्पुरुष श्रीबीडकर महाराज को भगवद्स्वरूप मानकर उनका बड़ा आदर करते थे । साधु की गत साधु ही जानता है ।

नर्मदा मैया की कृपा

श्रीमहाराज अधिकारी पुरुष थे और श्रीस्वामी समर्थ का अनुग्रह पाकर उनका पारमार्थिक अधिकार ऊँचाइयों पर पहुँचा था, इसलिए परिक्रमा के समय जब वे भूख-प्यास से बेहाल थे, तब स्वयं नर्मदा मैया ग्वालन के रूप में दूध लेकर आई । दूध पीने पर उनकी थकान दूर हो गई और वह देखते-देखते ओझल हो गईं ।

परिक्रमा पूरी कर के श्रीमहाराज जब ओंकारेश्वर लौटे, तब नागवाले ओसारे में ध्यान-मग्न होकर लेटे रहे । कोई सिद्ध पुरुष वहाँ आया है और वह

हमें भोजन खिलाएगा इस आशा से वहाँ साधु-गुसाईं आ पहुँचे। श्रीमहाराज जाग नहीं रहे थे और साधु-मंडली उतावली होकर भला-बुरा बक रही थी । उन सब को बिना पैसे के कैसे खिलाया जा सकता था ? तब स्वयं नर्मदा मैया वहाँ प्रकट हो गई और उसने अपना सुवर्ण कंकण उतारकर फेंका। वह बिजली की तरह आई और ओझल हो गई । वहाँ जो अधिकारी साधु थे, उन्हें नर्मदा मैया के दर्शन हो गए ।

दो बार नर्मदा मैया ने प्रकट होकर श्रीमहाराज की सहायता की, जिससे ज्ञात होता है कि नर्मदा मैया ने उनकी परिक्रमा की सेवा स्वीकार कर के उनपर कृपा की थी । अपना वात्सल्य उनपर बरसाया था ।

देवताओं ने अपना माना

श्रीमहाराज का अधिकार मानकर स्वयं अनेक देवताओं ने उन्हें अपना ही मान लिया । जब श्रीमहाराज काशी में थे, तब निचली मंजिल पर शिव जी के भक्त पांडुरंगभट भडकमकर रहते थे । उनकी पत्नी ने शिव जी को शिवामूठ अर्पण करने की सोची, तब शिव जी ने स्वप्न में प्रकट होकर पांडुरंगभट को बताया कि, "तुम जहाँ रहते हो, वहाँ ऊपरी मंज़िल पर मैं स्वयं रहता हूँ । वहाँ रहनेवाले को शिवामूठ अर्पण करने पर वह मुझे मिल जाएगी ।" स्वयं शिव जी ने श्रीमहाराज को अपना अभिन्न रूप माना ।

इसी प्रकार श्रीमहाराज श्रीज्ञानेश्वर महाराज के दर्शन के लिए चले तब आलंदी में अनुष्ठान करनेवाले एक भक्त को सपने में आकर श्रीज्ञानेश्वर महाराज ने कहा कि, "तुम्हारे अनुष्ठान की सफलता के लिए मैं कल सुबह दस बजे आ रहा हूँ। मेरे स्नान और भोजन का अच्छा प्रबंध रखना ।" उस भक्त ने बड़े भक्ति भाव से श्रीमहाराज को श्रीज्ञानेश्वर महाराज समझकर आतिथ्य किया। श्रीज्ञानेश्वर जी ने उन्हें अपने से अभिन्न माना।

श्रीमहाराज जब कोल्हापुर के निकट ज्योतिबा के दर्शन के लिए गए थे, तब स्वयं भगवान् ज्योतिबा ने वहाँ के पुजारी गोविंद खट्याल के स्वप्न में आकर बताया कि मेरा भक्त अपनी पत्नी के साथ कोल्हापुर से आ रहा है । उसके लिए अच्छा प्रबंध करना । स्वयं भगवान् ज्योतिबा सरदार के रूप में घोड़े पर सवार

होकर धर्मशाला में आए और उन्होंने माँसाहब के पास संदेश छोड़ा कि, "मैं महालक्ष्मी के दर्शन के लिए कोल्हापुर जा रहा हूँ, शाम को लौटूँगा तब आ जाना ।"

श्रीमहाराज बपचन में भगवान् विठ्ठल के दर्शन करने पंढरपुर में अकेले गए थे । वहाँ की भीड़-भाड़ में घबराकर वे रोने लगे, स्वयं भगवान् विठ्ठल ने एक देहाती आदमी के रूप में आकर उन्हें मंदिर की देव-प्रतिमा के दर्शन कराए और वह ओझल हो गया । बाद में एक भक्त ने श्रीमहाराज को बताया कि, "वह आदमी भगवान् विठ्ठल ही था । तुम बड़े भाग्यवान हो ।"

जब श्रीमहाराज देहू की भालचंद्र पहाड़ी के तले के निर्जन मंदिर में पहुँचे थे तब स्वयं भगवान् शिव जी ने जगन्माता पार्वती के साथ प्रकट होकर दर्शन दिए थे ।

इसी प्रकार जब श्रीमहाराज भालचंद्र पहाड़ी पर गए, तब त्रिशूलधारी एक अवधूत के रूप में शिव जी ने प्रकट होकर उन्हें बताया कि, "सारे योग की परिसीमा मैं ही हूँ, सारे विश्व में मैं ही बस रहा हूँ , मुझ अकेले को छोड़कर इस संसार में कोई दूसरा नहीं है, इस तथ्य को जान लेने पर ज्ञानेश्वर या तुकाराम भिन्न कहाँ हैं ? इसलिए व्यर्थ का पचड़ा छोड़कर लौट जाओ।" और वह अवधूत शिव तिरोधान हो गया ।

नर्मदा-परिक्रमा के अवसर पर टीलेवाले गुसाईं ने श्रीमहाराज को धूप में पानी भरने भेजा था तब गुसाईं को उसके आराध्य श्रीगोपालकृष्ण ने धमकाया कि, "मुझे पानी भरने भेजते हो ?" स्वयं देवताओं ने श्रीमहाराज को अपने से अभिन्न माना था । आध्यात्मिक ऊँचाइयों पर पहुँचकर वे स्वयं परमात्म-स्वरूप बन गए थे ।

सद्‌गुरु के प्रति निष्ठा

भगवान् श्रीदत्तात्रेय के अवतार अक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ को श्रीमहाराज ने अपना सद्‌गुरु मान लिया था । जब वे पहली बार अक्कलकोट गए, तब उन्होंने गुरु-दर्शन के बिना अन्न-जल न ग्रहण करने का संकल्प किया। उस समय श्रीस्वामी समर्थ राजमहल में गए थे और वहाँ जाने पर १५-१५ दिन

रहते थे । लेकिन श्रीमहाराज अपने संकल्प पर अड़िग रहे । उनकी यह निष्ठा देखकर श्रीस्वामी समर्थ राजमहल के सेवकों के मना करने पर भी चार दीवारी से कूदकर अपने भक्त को दर्शन देने के लिए बाहर निकले और उन्होंने उनकी पूजा स्वीकार की । श्रीस्वामी समर्थ जैसा औघड़ गुरु भी अपने इस भक्त को मिलने से अपने को रोक नहीं सका। इस प्रथम दर्शन से ही श्रीमहाराज को सद्‌गुरु की लगन लग गई ।

दूसरी बार जब वे सद्‌गुरु के दर्शन के लिए अक्कलकोट गए तब श्रीस्वामी समर्थ ने कठोर परीक्षा ली । श्रीमहाराज उनके पैर दबा रहे थे, तब अचानक उनके घुटनों के बीच से भयानक नाग फुफुकार उठा, फिर भी वे अड़िग रहे। उनकी निर्भयता को देखकर श्रीस्वामी समर्थ ने उन्हें 'राक्षस' कहा और तमाचा जड़ाकर समाधि में पहुँचा दिया । श्रीस्वामी समर्थ ने महाभोज करने को कहा, तो पास में पैसा न होने पर भी उधार लेकर महाभोज किया । श्रीस्वामी समर्थ ने उन्हें नर्मदा-परिक्रमा की आज्ञा दी तो उन्होंने उसे नि:संग बनकर पूरा किया। उस परिक्रमा के बीच ही उन्हें श्रीस्वामी समर्थ के समाधिस्थ होने की खबर मिली । वे उनके वियोग से तड़प उठे, लेकिन श्रीस्वामी समर्थ ने आश्वस्त किया कि, हम गए नहीं, जिंदा है । इसका अनुभव कराने के लिए उन्होंने शेर के रूप में और सिद्ध योगी की गुफा में स्वयं प्रकट होकर दर्शन दिए । सद्‌गुरु के प्रति उनमें अथाह प्रेम और अटूट निष्ठा थी । वे अपने अहंकार को गलाकर सदा गुरुमय बने रहे ।

श्रीमहाराज ने अपने को पूर्णत: सद्‌गुरु के चरणों में सौंप दिया था । सद्‌गुरुमाई को स्मरण करते हुए उन्होंने असंख्य चमत्कार कर के दिखाए । वे असहनीय दारुण देह-प्रारब्ध को सद्‌गुरु के बल पर भोगते रहे । सद्‌गुरु के प्रति ऐसी दृढ़-निष्ठा से ही श्रीबीडकर महाराज जहाँ भी उतरे वहाँ उन्होंने अपने को संपूर्ण शक्तियों के साथ झोंक दिया । सद्‌गुरु की महिमा अनंत होती है । वह अपने निष्ठावान् शिष्य को तत्काल अपने जैसा बना देता है । इसी निष्ठा के बल वे स्वयं सद्‌गुरु बन गए।

श्रीबीडकर महाराज ने अपने जीवन में मानवी संभावनाओं को चरम

सीमा पर पहुँच दिया। उन्होंने अथक उद्यमशीलता दिखाई, उत्कट रसिकता से जीवन का आस्वाद लिया, मस्तमौला बनकर कठोर विरागता भोगी, अखंड ध्यान-योग से पारमार्थिक असीमता पाई, अहंता गलाकर सच्चे अर्थों में स्वाधीनता (स्व-अधीनता) कमाई और परमात्मा से अभिन्नता प्राप्त की । अनेक देवताओं ने उन्हें अपना ही रूप माना । मनुष्य की सामर्थ्य का ऐसा उत्कर्ष दुर्लभ होता है । साधना के बल पर वे सिद्ध बन गए थे और सिद्ध से निश्चल ब्रह्म ।

श्रीमहाराज की शिष्यपरंपरा

श्रीबीडकर महाराज के अनगिन शिष्य-भक्त सर्वत्र बिखरे थे । जिनमें प्रमुख हैं - काशिनाथपंत गर्दे, बाबा गर्दे, वासुअण्णा भागवत, अण्णासाहब गुप्ते, नारायण रानडे, शिवरामपंत खांडेकर, आठवले, मुकुंदराव मोघे, रावसाहब सहस्रबुद्धे, बाबासाहब कर्वे, राहूरकर, गुप्ते वकील, मंगलदास, पुरुषोत्तम पिसोलकर, रघुनाथ कृष्ण टिलक, अण्णा कराडकर, राम जोशी, शिवशंकर शौचे, दामुअण्णा सोमण, अण्णा कर्वे, डॉक्टर ऊर्फ दत्तोपंत निरोखेकर, त्रिंबकराव बोडस, रामभाऊ दलवी, ल.ग. बापट, दामोदर देशपांडे, कनौजिया ब्राह्मणी, अण्णासाहब बहुतुले ।

इनमें से अण्णासाहब बहुतुले पुणे की शनिवार पेठ के मठ के उत्तराधिकारी रहे । दामोदर देशपांडे ने नासिक के दत्तमंदिर की परंपरा चलाई । रावसाहब ऊर्फ बाबा महाराज सहस्रबुद्धे श्रीमहाराज की आध्यात्मिक परंपरा के सच्चे वारिस थे, वे दुनियादारी से बहुत दूर थे जिनका परिचय संप्रदाय की परंपरा में दिया है। कनौजिया ब्राह्मणी पहुँची हुई साध्वी थीं, वे श्रीमहाराज से अनुग्रह पाकर साधनारत होने के लिए अज्ञात स्थान में चली गईं ।

दामोदरपंत बहुतुले उर्फ आण्णामहाराज

शिरढोण के दामोदरपंत बहुतुले श्रीगणेश जी के भक्त थे। उनके लिए उनकी दादी ही सब कुछ थी। वे दसवीं तक पढ़े थे। गणेश जी की नित्य सेवा करते थे। दादी के गुज़र जाने के बाद वे उदास रहने लगे। वे शिरढोण के श्रीहनुमान जी के मंदिर में बैठे रहते थे। श्रीहनुमान जी के दृष्टांत पर उन्होंने गृह-त्याग किया और १९०३ में श्रीबीडकर महाराज की सेवा में आए। वे श्रीमहाराज

का घर छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। मठ का पूरा प्रबंध वे ही देखते थे। श्रीमहाराज ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी माना था। श्रीमाँसाहब उन्हें अपना पुत्र मानती थी। श्रीमहाराज के देह-त्याग के बाद पूरे बारह साल इन्होंने मठकी सेवा की और श्रीमहाराज की ठीक पुण्यतिथि के दिन ही स्वयं देह-त्याग किया। वे सद्गुरु के चरणों में समर्पित थे।

वासुआण्णा भागवत

श्रीमहाराज से काशी में जो पांडुरंगभट भडकमकर मिले थे, वे ठाणे में आ गए थे। उनके बहाने श्री बलवंतराव भागवत श्रीमहाराज के संपर्क में आए। श्री भागवत के साथ उनके सौतले छोटे भाई वासुआण्णा भागवत श्रीमहाराज से प्रभावित हो गए। प्रारंभ में वे ठाणे से कुछ दिन श्रीमहाराज की सेवा में आ जाते थे। बाद में वे सपरिवार श्रीमहाराज के आश्रय में आए। श्रीमहाराज ने वासुआण्णा की कठोर परीक्षाएँ लीं। उन्हें इंप्रूवट ट्रस्ट से बहुत पैसा मिला, लेकिन वह सब उन्होंने श्रीमहाराज के चरणों में अर्पण किया। बहुतुले के बाद वासुआण्णा ही मठ का प्रबंध देखते थे। वे अधिकारी पुरुष थे।

आण्णासाहब गुप्ते

ठाणे के वी.जी.गुप्ते उर्फ आण्णासाहेब गुप्ते बी.ए.,एल्एल्. बी. थे। उनकी पुणे में वकीली नहीं चल रही थी। बड़ा परिवार और आमदनी नहीं थी । इस हालत से वे तंग आ गए। वे तुळसीबाग में जाकर श्रीराम जी के और श्रीहनुमान जी के दर्शन करते थे। डॉ.दत्तोपंत ऊर्फ काकासाहब निरोखेकर उनके मित्र थे। उन्होंने श्रीमहाराज के दर्शन करने की सलाह दी और आण्णासाहब श्रीमहाराज के यहाँ जाने लगे। कुछ ही दिनों में उन्हें कोर्ट में नाज़िर की नौकरी मिली और बढ़ते-बढ़ते वे सद्गुरु की कृपा से मुन्सीफ बन गए। श्रीमहाराज के प्रति उनकी अटल निष्ठा थी।

शिवरामपंत खांडेकर

नासिक के शिवरामपंत खांडेकर श्रीमहाराज के शिष्य थे। नासिक के गोपालबुवा, मौलाबुवा, त्रिंबक जहागीरदार, अवधूतबुवा जैसे सत्पुरुषों के वे प्यारे थे। इन्होंने पद, अभंग, आरतियाँ, अष्टक जैसी अनेक रचनाएँ की हैं।

अवधूतबुवा के साथ उनकी बहुत बनती थी। वे दोनों गोदावरी के किनारे बैठे थे। तब बुवा बोले, "अब दुपहर के भोजन का कोई प्रबंध करना चाहिए।" शिवरामपंत ने कहा, "आप जहाँ बैठे हैं, वहीं आपको राम नहीं देगा क्या?" उन्होंने कहा, "राम हमें देगा। लेकिन देह-प्रारब्ध को लेकर बैठने का हमारा अधिकार नहीं, वह तुम्हारे बाबा का-बीडकरमहाराज का है। हमें अब भी पेट की चिंता सताती है।

आठवले

नासिक षड्‌यंत्र के पहले कुछ दिन आठवले नाम का एक क्रांतिकारी श्रीमहाराज के पास आया। उसने पूछा कि, "क्रांति-आंदोलन को सफलता मिलेगी क्या?" तब श्रीमहाराज ने कहानी बताई कि, "एक चींटे ने अपनी माँ से कहा, 'माँ,माँ,' मैंने आज गुड़ की भेली को देखा। कल मैं उसे उठाकर घर ले आऊँगा, तब हम सब की गरीबी दूर होगी।" उसकी माँ ने कहा, "तुम्हारी कमर ही मुझे तुम्हारी बहादुरी बता रही है। तुम दूसरे हजारों चीटों के साथ भेली के नीचे दबकर मर जाओगे।" श्रीमहाराज ने आठवले से आगे कहा, "नासमझी, मत करो, मर जाओगे। " आठवले को अच्छा नहीं लगा।

कुछ दिनों के बाद वह कल्याण में पकड़ा गया। उसे पुणे लाया गया। उसकी ज़बानी ली गई तो उसने कहा कि, "श्रीमहाराज का कहा माना होता, तो यह नौबत न आती।" पुलिस ने श्रीमहाराज का नाम-पता पूछ लिया। पुलिस सिपाही श्रीमहाराज के यहाँ आकर पूछताछ करने लगे। श्रीमहाराज ने पूछा, "वह क्या कह रहा था?" पुलिस ने बताया कि उसने चींटे की कहानी बताई और कहा कि, "मैंने श्रीमहाराज की सुनी होती, तो अच्छा होता।" तब श्रीमहाराज ने कहा, "उसे मेरा संदेश देना कि इस मौके पर तुम्हें जैसे मेरी याद आई, वैसे तुम भगवान् की याद करो।" वह भगवान् को पुकारने लगा।

उसके पास के बैग में आपत्तिजनक चीजें मिली थीं। वह बैग उसीका है इसका सबूत नहीं मिला, इसलिए उसे बरी किया गया। वह श्रीमहाराज का निस्सीम भक्त बन गया।

मंगळदास

मंगळदास नाम के गुजराथी सज्जन, डॉ.दत्तोपंत निरोखेकर के छात्रावास के मित्र थे। वे ठाकुर जी के बड़े भक्त थे। कृष्ण-भक्ति में मग्न रहते थे । वे निरोखेकर से थिआसफीस्ट बनने का बार बार आग्रह करने लगे। लेकिन निरोखेकर कहा कि, "मैंने पहले से एक गुरु पाया है।" उन्होंने श्रीबीडकर महाराज की जानकारी दी, तो मंगळदास के मन में श्रीमहाराज के दर्शन करने की इच्छा जागी। लेकिन वे दुविधा में पड़ गए कि श्रीमहाराज के दर्शन से मेरी कृष्ण-भक्ति में बाधा पड़ जाएगी। तब एक रात उन्हें सपना आया और श्रीमहाराज ने स्वप्न में कहा कि, "अरे, कृष्ण पाँच हजार साल पहले हो गया। मैं आज हूँ।" दूसरे दिन उन्होंने निरोखेकर को बताया। वे श्रीमहाराज के दर्शन के लिए पुणे आए और उनके भक्त बन गए।

राम जोशी

ठाणे के राम जोशी पुश्तैनी वैद्य थे। पांडुरंगभट भडकमकर के परिचय से वे श्रीमहाराज के शिष्य बन गए। वे मन के भोले भक्त थे। इस निर्मल भाव के कारण वे विख्यात वैद्य बन गए। बड़े बड़े वैद्य और डाक्टर जहाँ घुटने टेक देते थे, ऐसे मरीज़ वैद्य राम जोशी के इलाज से ठीक हो जाते थे। वे माँसाहेब के बड़े प्यारे थे। वे कहती थीं, "राम जो पूजा करता है, वह मेरे विठ्ठल को प्यारी लगती है।" श्रीमहाराज सब को डाँटते-फटकारते थे, लेकिन वे राम जोशी को उनके भोले भक्तिभाव और विनम्रता के कारण कभी दुखाते नहीं थे। श्रीमहाराज की कृपा से वे परमार्थ में आगे बढ़ गए थे।

शिवशंकर शौचे

नासिक के शिवशंकर शौचे माता, पिता और पत्नी के गुज़र जाने से उदासीन रहने लगे। उसपर गरीबी के मारे थे। जब वे श्रीमहाराज से मिले तो श्रीमहाराज ने कहा, "विवाह करने पर सुख मिलेगा।" वे नासिक में श्रीमहाराज के दर्शन करने हर रोज आने लगे। एक दिन उन्होंने पूछा कि, "अकेला हूँ, विवाह कर के दो लोगों के पालन का मतलब आग से निकलकर खाई में कूदना होगा, इसलिए मुझे आप परमार्थ बताइए।" श्रीमहाराज ने कहा, "यह तुम्हारा

स्मशान-वैराग्य है। हर कोई अपनी किस्मत लेकर आता है। पहली पत्नी मर गई इसलिए दूसरी की किस्मत मरी नहीं। वासना के जलते, वैराग्य ओढ़कर परमार्थ करने से फज़िहत होगी। वासना और परमार्थ-एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। संसार में रहकर सत्य-वचन, लीनता और पर-स्त्री-मातासमान, यह पक्का निश्चय रखने पर यह भी परमार्थ है। शुद्ध मन से और ध्यानपूर्वक हरिनाम-स्मरण करना चाहिए। वही पार लगाएगा।" शौचे श्रद्धापूर्वक श्रीमहाराज की आज्ञा का पालन कर के सुखी बन गए।

लक्ष्मण गणेश बापट

घर की गरीबी और सेहत की खराबी के कारण बापट बड़े सताए गए थे। मैट्रीकतक पढ़ाई पूरी करने के बाद वे डाकघर में नौकर हो गए। प्रथम पत्नी के गुज़रने पर श्रीमहाराज ने इनका दूसरा विवाह करा दिया। उन्होंने बापट को प्रतिदिन १०मिनट का नियमित ध्यान करने का उपदेश दिया था। सन १९११ में माँसाहब का निधन होने पर श्रीमहाराज ने इन्हें सपरिवार मठ में ही आने की आज्ञा दी। वे सेवा करते रहे। उन्हें हार्निया, प्लेग और तीन बार टाइफाइड हो गया था। श्रीमहाराज की कृपा से वे बच गए।

ल.ग.बापट ने मराठी में श्रीबीडकरमहाराज का चरित्र लिखा है। वे सन् १९३७ से १९६० तक, आखरी साँस तक श्रीमहाराज के मठ के व्यवस्थापक रहे।

नासिक के कर्वे-बंधु

नासिक के वामनराव ऊर्फ बाबासाहेब कर्वे वकीली की परीक्षा में सफलता नहीं पा रहे थे। वे श्रीमहाराज की शरण में आ गए और उनकी कृपा से पास हो गए। तब से उन्हें श्रीमहाराज के प्रति श्रद्धा उपजी। श्रीमहाराज की कृपा से उन्हें लौकिक-पारमार्थिक सुख प्राप्त हुआ।

बाबासाहब के कारण उनके चचरे भाई आण्णासाहब कर्वे भी श्रीमहाराज के शिष्य बन गए। आण्णासाहब क्रांतिकारियों के प्रभाव में आ गए थे, तब श्रीमहाराज ने उपदेश देकर उनसे दूर रहने को कहा। उन्होंने यह भी कहा कि, "तुम नासिक में रहो, कहीं नौकरी कर लो। एल्एल्. बी की पढ़ाई के लिए मुंबई

मत जाओ।" लेकिन उन्होंने सुनी नहीं। आखिर वे नासिक षडयंत्र मामले में फँस गए। खून का जुर्म साबित हुआ और फाँसी की सजा मिल गईं।

श्रीसद्‌गुरु के प्रति श्रद्धा-रखने से बाबासाहब को सब मिल गया, लेकिन आण्णासाहब को अश्रद्धा के कारण मौत।

रामभाऊ दलवी

रामचंद्र शंकर दलवी (खेड, ता. वाळवे) खाते-पीते आदमी थे। डॉ. दत्तोपंत निरोखेकर के भाई नारायण लक्ष्मण निरोखेकर दलवी के साले थे। एक बार नारायण निरोखेकर उन्हें लेकर श्रीमहाराज के पास आ गए। तब से वे उनसे प्रभावित हो गए और समय-समय पर दर्शन के लिए आने लगे। दलवी को पोवाड़े रचने की प्रतिभा थी। उन्होंने एक हरिदास से उपदेश पाया था। श्रीमहाराज के दर्शन के बाद उनकी प्रतिभा खिल उठी और वे शाहीर के रूप में विख्यात हो गए। उन्होंने श्रीशिवछत्रपति पर ऐतिहासिक पोवाड़ा रचा है।

एक बार वे चार दिन के लिए मठ में आए थे। जाने निकले, तो श्रीमहाराज ने उन्हें रोक लिया। उनकी आज्ञा वे टाल नहीं सके। रात में आण्णामहाराज बहुतुले को बिच्छू डँस गया। बड़ी वेदना होने लगी। श्रीमहाराज ने दलवी से कहा कि तुम बिच्छू का ज़हर उतरोगे क्या? दलवी मंत्र जानते थे। उन्होंने मंत्र पढ़कर डँसने की ज़गह राख मली तो ज़हर उतर गया। श्रीमहाराज ने कहा, "इसीलिए तुम्हें रोक लिया था।" सुनकर दलवी चकित रह गए और उनकी श्रीमहाराज के प्रति श्रद्धा दृढ़ हो गई।

मुकुंद पांडुरंग मोघे

इंदौर के मुकुंद मोघे बळवंतराव भागवत के रिश्तेदार थे। मोघे ने एल्एल्. बी.कर के एल्एल्. एम.की परीक्षा दी थी। भागवत के कारण वे श्रीमहाराज के आश्रय में आ गए। वे क्रांतिकारियों के दल में थे। लेकिन श्री श्रीमहाराज ने उन्हें बता दिया था कि तुम इस झमेले में मत फँसो।

फिर भी क्रांति के आकर्षण में नासिक-षड्यंत्र में वे फँस गए। नासिक के अंग्रेज कलेक्टर जेक्सन मार डालना था। तब तय हुआ था कि अनंत कान्हेरे गोली दागेंगे। एक थिएटर में जेक्सन आया था,तो कान्हेरे की गोली से वह मारा

गया। सब वहाँ से भाग निकले। मोघे घर जाते तो पुलिस पकड़ लेती,इसलिए वे चोरी-छिपे श्रीमहाराज के मठ में आ गए। श्रीमहाराज ने बात को ताड़कर कहा, "ज़ो हुआ, अच्छा नहीं हुआ। हर एक को अपनी कूवत जानकर काम करना चाहिए, सिर्फ आंदोलन करने से कुछ नहीं बनता। अब आए तो हो यहीं रहो, बाहर मत निकलो।"

मोघे मठ में ही रहे, लेकिन घर के लोग फिक्र में न डूबे इसलिए उन्होंने एक पोस्ट-कार्ड भेज दिया और पुलिस के हाथ लग गया। पुलिस आकर पुणे के मठ से उन्हें कैद कर के ले गई। मोघे श्रीमहाराज के सामने गिड़गिड़ाए और उन्होंने दया की भीख माँगी, तब श्रीमहाराज ने कहा, "जाओ, बरी हो जाओगे।" मोघे को फाँसी की सजा ज़रूर मिलती। वे जेल में श्रीमहाराज की प्रार्थना करते, उनका नाम-स्मरण करते रहे। लेकिन इकबाली गवाह उन्हें पहचान नहीं पाया और मोघे को बरी कर दिया गया। श्रीमहाराज ने फैसले के पहले कहा था, "मोघे के आने पर बता दो।"

मोघे जेल से निकले। कहाँ जाए? उन्होंने श्रीमहाराज के दर्शन कर के इंदौर जाने की सोची। जेब में पाई भी नहीं थी। इतने में रास्ते में उनके सामने एक काला-कलूटा आदमी आ गया। बिना चाहे, बिना माँगे उसने पाँच का नोट उनकी ज़ेब में रख दिया। मोघे हार, पेढ़े लेकर श्रीमहाराज के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा, "अरे, स्वयं विठ्ठल ने तुम्हें दर्शन दे दिए और तुम पहचान नहीं पाए?" मोघे अपने भाग्य पर रोमांचित हो गए।

श्रीमहाराज ने उन्हें घर लौटने की आज्ञा दी। जाते समय भुसावल में खालम्मा से मिलने को कहा। वह संत मिली, तो उसने मोघे को चाँटा लगाया और अपनी गोद में बिठाकर रोटी खिलाई। उसने कहा, "शेर का बच्चा होकर घर-घर कायकू फिरता है? आसमान से कूदेगे तो पैर टूट जाएगा। घर जाएगा तो पेट भरेगा।"

इंदौर लौटने पर मोघे ने धन-दौलत, इज़्ज़त पाई। उन्होंने अध्यात्म के मार्ग पर भी बड़ी प्रगति की थी। श्रीमहाराज की कृपा से उन्हें गृहस्थी और परमार्थ में सफलता मिली। वे इंदौर के स्टेट मिल में अफसर थे।

गर्दे पिता-पुत्र

काशिनाथ गर्दे

काशिनाथ गर्दे ठाणे के बळवंतराव भागवत के बहनोई थे। भागवत के बहाने काशिनाथपंत को श्रीमहाराज के दर्शन हुए। श्रीमहाराज की कृपा से वे वकीली की परीक्षा में सफल हुए। यहाँ वकीली नहीं चलेगी, इस विचार से उन्होंने विदर्भ में जाने की सोची। लेकिन वहाँ की सनद मिलने में दिक्कतें आ गई। सनद मिली लेकिन वकीली नहीं चली। आखिर मुन्सफी मिल गई और आगे वे नागपुर में सबजज बन गए। श्रीमहाराज की कृपा से स्वार्थ और परमार्थ दोनों में सफलता मिल गई।

काशिनाथपंत गर्दे श्रीमहाराज के दर्शन करने नित्य जाते। उस समय श्रीमहाराज ने कहा कि, "पुणे में तुम जम नहीं पाओगे, तुम विदर्भ में जाओ।" श्रीमहाराज को काशिनाथपंत से बड़ा प्रेम था। उन्होंने उनकी परमार्थ के क्षेत्र में प्रगति कराई। काशिनाथपंत जब किसी साधु-सत्पुरुष दर्शन करने जाते थे, तब वे लोग उनके अधिकार को पहचानकर बड़ा प्रेम करते थे।

काशिनाथपंत शिर्डी के साईबाबा के दर्शन करने गए, तो झुकते ही बाब जी ने कहा, "आइए रामदास।" श्रीबीडकर महाराज के रामचंद्र या रामानंद नाम में 'राम' था । साईबाबा ने उन्हें आग्रहपूर्वक आठ दिन अपेन पास रख लिया ।

काशिनाथपंत शेगाँव के गजानन महाराज के दर्शन करने ई.सन १९०५ में गए तो गजाननमहाराज ने उनकी पीठ पर अपनी कुहनी से धक्का मारा। वे घर लौटे तो उन्हें मुन्सफी की नियुक्ति का तार मिला। वे फिर एक बार १९१० में गए थे तो गजानन महाराज ने काशिनाथपंत का शर्ट-कोट उतारकर अपने शरीर को पोंछा और लौट दिए। महाराज के रज:कणों से पवित्र बने वस्त्रों को पाकर काशिनाथपंत को कृतार्थ लगा।

काशिनाथपंत एलिचपुर के सत्पुरुष शंकर भटजी से मिलने गए तो वे उनकी अगवानी के लिए रास्ते पर खड़े थे। उन्होंने विठ्ठल मंदिर का सभा मंडप खुद साफ कर के बैठक बिछाई। उन्होंने काशिनाथपंत को गोद में ठिबाकर चूम लिया और कहा कि, "आप दुनिया के मुन्सीफ हैं। चिंता मत कीजिए, भगवान

कृपा करेंगे।”

काशिनाथपंत एक बार जालना में संत देव शिरस्तेदार के दर्शन करने पहुँचे। उन्होंने कहा कि, “संतों के दर्शन करने की योग्यता मुझमें नहीं है।” तब देवमहाराज ने कहा, “मुन्सीफसाहेब, आइंदा ऐसा मत बोलिए। आप हमारे ही हैं। अभी देर हैं। मौका आने पर आप चोबीसों घंटे चमत्कार ही चमत्कार देखेंगे।.. चिंता मत कीजिए। सब कल्याण होगा।”

काशिनाथपंत ग्वालियर में एक औलिया नग्न अवधूत के दर्शन करने गए। वे चढ़ने में मुश्किल तीसरी मंजिल पर रहते थे। दर्शन के लिए आनेवालोंके पत्थर मारते थे। काशिनाथपंत धीरज बाँधकर उनके पास गए तो वे अवधूत उनकी ओर देखते ही रह गए। पीठ पर शाबाशी देते हुए कहने लगे कि, “बेटा, तुमकू सब है, सुन्ना है, चाँदी है, मोती है, माणिक हैं। तुम्हारे ऊपर ऊपरवाला राज़ी है। उप्परवाला कैसा झमकता है देखो।”

काशिनाथपंत पुणे आते-जाते समय भुसावल की खालम्मा से मिलने जाते थे। वे बड़े प्यार से उन्हें अपने पास बिठा लेती थीं और बातें करती थीं।

बाबा गर्दे

काशिनाथपंत गर्दे के पिता बाबा गर्दे महाराष्ट्र में बड़े वेदान्ती के नाते विख्यात थे। उनके गीतामृत शतपदी और पंचदशी जैसे ग्रंथ उनकी विद्वत्ता के साक्षी हैं। वे बड़े वेदान्ती विद्वान थे, लेकिन पारमार्थिक उन्नत्ति प्राप्त करने के लिए श्रीमहाराज की कृपा प्राप्त करना चाहते थे। अपनी विद्वता का उन्हें अहंकार था। इसलिए श्रीमहाराज उन्हें गालियाँ देते थे। एक बार उन्होंने श्रीमहाराज का अनुग्रह पाने के लिए धरना दिया। श्रीमहाराज ने कहा कि, “श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।” वे बाबा गर्दे को उनकी कोरी विद्वता देखकर आत्मघाती कहते थे। एक बार काशिनाथपंत ने अपने पिता से कहा कि, “वे आपको गालियाँ देते हैं, तब आप उनके पास क्यों जाते हैं?” तब बाबा गर्दे ने उत्तर दिया, “वे हमें गालियाँ दें, आत्मघाती या मूर्ख कहें, लेकिन वे हमारे लिए विश्रांति-स्थान हैं। वे हमें अपनी ओर खींच लेते हैं। पता नहीं उनमें क्या जादू है।”

एक बार खुद बाबा ने श्रीमहाराज से पूछा, “आप बच्चों को अपना मानते हैं, तब हम आपको आत्मघाती क्यों लगते हैं।” तब श्रीमहाराज ने हँसकर कहा कि, “आपने दुनिया का गुरुत्व लिया हैं। उसके छूटे बिना हमारी नहीं चलती। एक म्यान में दो छुरियाँ नहीं रह सकती।” काशिनाथपंत ने श्रद्धा के बल पर श्रीमहाराज की कृपा पाई, लेकिन उनके पिता विद्वता के अहंकार के कारण उससे वंचित रह गए।

* * *

श्रीबीडकर महाराज भविष्य-वाणी

स्वातंत्र्य प्राप्त होने पर भी अगर धर्म का पुनरुजीवन नहीं होगा, तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकंप, ज्वालामुखी, आँधी-तूफान, बाढ़, अकाल, संक्रामक बीमारी आदि संकट पैदा होंगे और लोग त्रस्त होंगे। अंत में लोग फिर से धर्म की ओर मुड़ेंगे और सत्य-निष्ठा आएगी, तभी हिंदुओं का नष्टचर्य मिट जाएगा। तब वे सारे संसार का गुरु बनने में समर्थ होंगे। धर्म एव हतो हन्ति। ‘धर्मो रक्षति रक्षितः।’ यही हमारा ब्रीद है। जो लोग इससे लिपटे रहेंगे, उन्हींकी रक्षा हम किसी भी हालत में करेंगे। यही साधुसंतों का कार्य होता है और गोचर-अगोचर सृष्टि में हम इसी कार्य को निभाते हैं।

१६. संप्रदाय की परंपरा

श्रीबीडकर महाराज के सद्‌गुरु
अक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ महाराज

इ.स. १२७५ के आसपास कारंजा नगर में माधव और अंबा भवानी इन सदाचारी और सच्छील माता-पिता के घर श्रीदत्तात्रेय ने श्रीमत् नृसिंह सरस्वती का अवतार ग्रहण किया। यह बालक जन्मत: केवल ओंकार का ही उच्चारण करता था। माता-पिता चिंतित हुए कि कहीं यह गूँगा तो नहीं। किंतु उपनयन संस्कार होने के बाद वह बालक चारों वेदों का धड़ल्ले से पाठ कर के बड़े-बड़े शास्त्री-पंड़ितों को चकित करने लगा।

उन्होंने काशी में तपश्चर्या करने के हेतु घर का त्याग किया। वहाँ वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध श्रीकृष्ण सरस्वतीजी ने उन्हें संन्यासाश्रम की दीक्षा दी। अपनी अनगिनत अद्‌भुत् लीलाओं द्वारा असंख्य भक्तों का उद्धार करते हुए उन्होंने बड़े- बड़े ज्ञानियों और योगियों को उपदेश दिया।

श्रीक्षेत्र गाणगापुर में बहुत दिनों तक निवास कर के भक्तों के हित उन्होंने अपनी निर्गुण पादुकाएँ वहाँ स्थापित कीं और वे पाताल गंगा के किनारे आ गए। उन्होंने अपने शिष्यों को एक पुष्पासन बनाने की आज्ञा की। उस आसन पर विराजमान होकर श्रीमन्नृसिंह सरस्वती जी धारा की उलटी दिशा में, नदी के उद्‌गम की ओर कदलीबन में चले।

उन्होंने कदलीबन में कोई डेढ़ सौ वर्ष तपस्या की। तत्पश्चात् उन्होंने जावा, सुमात्रा, इंडोनिशिया, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में सर्वत्र संचार करते हुए अनेक जीवों का उद्धार किया और वे तिब्बत पहुँचे। हिमाच्छादित पर्वत शिखरों पर भ्रमण करते हुए उन्होंने वहाँ के वर्षानुवर्ष, शतकानुशतक तपश्चर्या द्वारा देह-कष्ट उठानेवाले कई तपस्वियों का उद्धार किया।

उसके बाद श्रीमन्नृसिंह सरस्वतीजी हिमालय में एक देवदार वृक्ष के नीचे तपस्या करने के लिए बैठ गए। फिर कोई ढाई सौ वर्षों के बाद किसी लकड़हारे के बहाने एक बड़ी-सी बाँबी में प्रकट हो गए। कई बार वे आसेतु हिमाचल परिभ्रमण करते हुए और अनगिनत लीलाएँ दिखाते हुए स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे गए। कहीं वे दिगंबर स्वामी, तो कहीं चंचल भारती कहलाए। वे मुंबई में बारह साल रहे। वहाँ से मंगलवेढा, राजुरी, मोहोल, सोलापुर में वास करते हुए अंत में इ. स. १८५७ में अक्कलकोट रियासत में उन्होंने डेरा जमाया। यहाँ उन्हें श्रीस्वामी समर्थ, अक्कलकोटनिवासी स्वामी समर्थ या अक्कलकोट स्वामी कहा जाने लगा। उनकी भक्त मंडली में सभी जाति-धर्म के लोग थे। श्रीस्वामी समर्थजी के पावन वास से अक्कलकोट तीर्थक्षेत्र बन गया। वे ऐसी विभूति थे कि उनके दर्शन मात्र से हजारों भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण हो गईं। ‘श्रीगुरुलीलामृत’ नामक प्रासादिक ग्रंथ श्रीस्वामी समर्थजी के लीला-चरित्रग्रंथ के रूप में विख्यात हैं। श्रीदत्तात्रेय की तरह उनके स्मर्तृगामित्व की प्रतीति प्रारंभ से आती रही हैं। श्रीबीडकर महाराज, शिरडी के साईबाबा, श्रीशंकरमहाराज, शेगाँव के श्रीगजाननमहाराज, श्रीदेव मामलेदार (नासिक), श्रीबाळाप्पा महाराज, श्रीचोलाप्पा महाराज (अक्कलकोट), श्रीनृसिंह सरस्वती (आलंदी) जैसे अनेक शिष्य उन्होंने बनाए। अक्कलकोट रियासत के अधिपति मालोजीराजे भी उनके भक्त थे।

श्रीस्वामी समर्थ जी की प्रत्येक करनी में भक्तों को गूढ़ार्थ वाचक पूर्व सूचना मिलती थी। अमीरी और सत्ता की मद से वे नफरत करते थे। वे उपासकों से हमेशा कहते थे कि सागर भरा पड़ा है, जितना ले सको, ले लो। अथवा खेत उपजाओ और खाओ। शुष्क पांडित्य का मिथ्याभिमान लेकर यदि कोई उनके दर्शन के लिए आ जाता तो वे उसकी कलई खोल देते थे। अक्कलकोट में उन्होंने चैत्र वद्य १३ शके १८००, मंगलवार, दि. ३० अप्रैल १८७८ के दिन अपने छ: सौ वर्ष पुराने अवतार की समाप्ति अपने प्रिय वटवृक्ष के तले की। उन्होंने कहा था “हम गया नहीं, ज़िंदा है।” इस वादे का एहसास भक्तजन बार-बार करते हैं। श्रीस्वामी समर्थ महाराज ने श्रीबीडकर महाराज को स्वरूप-संप्रदाय चलाने की आज्ञा दी।

***

श्रीबीडकर महाराज के शिष्योत्तम
श्रीसद्‌गुरु बाबा महाराज ऊर्फ : श्रीरावसाहेब सहस्रबुद्धे ऊर्फ
श्रीवासुदेवानंत सरस्वती महाराज

श्रीबीडकर महाराज के स्वरूप संप्रदाय को आगे चलाने के लिए अक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ महाराज जी ने श्रीसद्‌गुरु बाबा महाराज जी के रूप ई. स. १८८३ में हुबली क्षेत्र में जन्म लिया। ई. स. १९०६ में श्रीबीडकर महाराज जी ने उनके मस्तक पर कृपाहस्त रखकर शक्तिपात दीक्षा द्वारा उन्हें पारमार्थिक पूर्णत्व को पहुँचा दिया, उस समय श्रीबाबा महाराज अभी अभी इंजिनियरी की उपाधि परीक्षा (एल्. सी. इ.) उत्तीर्ण होकर निकले थे।

वे सद्‌गुरु के अनुग्रह होने के क्षण से लेकर अंत तक विदेह अवस्था में विचरण करते रहे। श्रीबीडकर महाराज ने ही उनका ब्याह रचाया था। उनके एक कन्या हुई। गृहस्थी में उन्होंने असि. इंजिनियर के नाते रत्नागिरी, पेण, महाड, नागोठणा, पनवेल आदि स्थानों पर सरकारी नौकरी की। ई. स. १९२३ में बांद्रा के चीफ आर्किटेक्ट के पी. ए. के पद पर उनकी नियुक्ति हुई। उनके ज्ञान और बुद्धिमत्ता का उनके वरिष्ठ अंग्रेज़ अफसर लोहा मानते थे। श्रीबाबा महाराज सदा अद्वैत आत्मतत्त्व में रँगे रहते थे। एक बार वेतन के दिन घर लौटते समय अपना पूरा वेतन राह में खड़े एक भिखारी के हाथ में थामकर वे निश्चिंत मन से चले गए। आखिर में ई. स. १९२८ में इन्वेलिड पेन्शन लेकर वे सेवानिवृत्त हुए और पुणे की नारायण पेठ में धुमाल बिल्डिंग में रहने लगे।

वे वहाँ से पास के श्रीबीडकर महाराज के मठ में रोज़ त्रिकाल दर्शन के लिए जाते थे। उनकी वंदन-भक्ति अनन्य साधारण थी। वे सद्‌गुरु के घर का पनहरा तो क्या, मठ की सीढियों से उतरनेवाली बिल्ली का भी वंदन करते थे। कभी कभी देह में १०५ डिग्री बुखार होने पर भी वे आत्मानंद में निमग्न रहते थे। एक बार वे लगातार २१ दिनों तक सूर्योदय से सूर्यास्त तक टकटकी लगाकर सूर्यबिंब को देखने की साधना करते रहे।

श्रीबाबा महाराज उच्च विद्याविभूषित, वरिष्ठ सरकारी अधिकारी थे, किंतु उनकी धर्मपत्नी पर लकड़ियाँ न होने से चूल्हा बंद रखने की नौबत आती थी। फिर भी श्रीबाबा महाराज उस हालत में निश्चल रहते थे।

धर्मपत्नी के देहावसान के बाद वे पैसे देकर भोजन का डिब्बा मँगाते थे। उनके शिष्य भी उनके लिए भोजन या खाने की चीजें ले आते थे, किंतु वे सब ४-४ दिनों तक पड़ी रहती थी। फिर कभी वे उसमें से कणभर खाकर बचा हुआ शिष्यों में बाँट देते थे। कई बार लोगों ने अनुभव किया है कि उन बाँसी चीजों में ताज़ा चीजों का स्वाद होता था। श्रीबाबा महाराज कहते थे कि, “आइ वान्ट टू स्टार्ट सत्ययुग नाऊ।” (मुझे फिर से सत्ययुग-अर्थात न्याय और धर्म का राज्य अभी लाना है।)

श्रीबाबा महाराज अपने शिष्यों को सरल उपदेश देते थे कि मनुष्य की रहनी में सादगी हो। अपनी उपासना का कभी ढिंढोरा नहीं पीटना चाहिए। सब से पहले आदमी बनने की कोशिश करो। अपने को नेता कहलानेवाले बहुत हैं; किंतु देश का सच्चा नेता नहीं है, जिसने काम-क्रोधादि षड्‌रिपुओं को जीता है। शरीर कुछ भी माँगता रहा, लेकिन हम क्या उसे सब कुछ दे दें?

तत्कालिन संत-संत्पुरुषों के मन में श्रीबाबा महाराज के प्रति अतीव आदर था।

श्रीबाबा महाराज अंतिम दिनों में बीमार और कमज़ोर हालत में बिस्तर पर पड़े रहते थे। वे हिल-डुल नहीं सकते थे। इसलिए सद्‌गुरु के मठ नहीं जा सकते थे। एक दिन श्रीबीडकर महाराज की पुण्यतिथि की पालकी का जुलूस धुमाल बिल्डिंग से होकर गुज़रने लगा। श्रीबाबा महाराज एकदम उठकर दौड़े और उन्होंने पालकी के दर्शन किए। उनकी आँखों से आँसू टपकने लगे। उन्होंने काँपते हुए हाथों से प्रणाम किया। उनकी गुरुनिष्ठा ऐसी दृढ़ थी।

इ.स. १९५४ में उन्होंने पुणे के अपने निवासस्थान पर अपनी पंचमहाभूतात्मक देह का त्याग किया। उनके सच्छिष्य श्रीदिगंबरदास महाराज ने बाद में श्रीबाबा जी की निजी स्वामित्व की जगह पर वहाँ श्रीबाबा महाराज सहस्रबुद्धे समाधिमंदिर बनवाया।

देह त्याग के पूर्व उन्होंने अपने शिष्यों से वादा किया था कि, तुम भक्तों की रक्षा के लिए मैं इस स्थान में (समाधि मंदिर में) एक हजार वर्ष वास करूँगा। भक्त आज भी उनके वचन का अनुभव नित्य करते हैं।

***

श्रीबीडकर महाराज के प्रशिष्य
श्रीविठ्ठल गणेश जोशी महाराज
(श्रीसद्गुरु दिगंबरदास महाराज)

देश-जागरण में छत्रपति शिवाजी महाराज जी और धर्म-जागरण में श्रीसमर्थ रामदास जी से प्रेरणा पाकर अंतिम साँस तक अथक कार्य करनेवाले श्रीसद्गुरु दिगंबरदास महाराज का आधुनिक काल के महाराष्ट्री संतों में विशिष्ट स्थान है।

श्रीमहाराज का जन्म रत्नागिरि के निकट बसे पोमेंडी गाँव के जोशी कुल में आश्विन शुक्ला अष्टमी, शके १८३४, दि. १७ अक्तूबर १९१२ के दिन हुआ। उनके पिता का नाम गणेश और माता का जानकी था। माता-पिता ने श्रीमहाराज का नाम बड़े प्यार से विठ्ठल रखा था। पिता मालगुज़ार थे। भरा-पूरा घर था। ये विठ्ठल गणेश जोशी बचपन से ईश्वर भक्त और विरक्त थे। ऐसे में १२ वें वर्ष माता की छत्रछाया और १८ वें वर्ष पिता की छत्रछाया उठ गई और उनके मन में सद्गुरु को पाने की तीव्र लालसा जागी। वे सद्गुरु की खोज में घर छोड़कर निकले। संयोगवश वे पुणे में श्रीरामानंद बीडकर महाराज के मठ में पहुँचे, जहाँ उन्हें सद्भाग्य से श्रीबाबा महाराज सहस्रबुद्धे ऊर्फ श्रीवासुदेवानंत सरस्वती जी के दर्शन हुए। गुरु और शिष्य दोनों को परस्पर की प्रतीक्षा थी। श्रीबाबा महाराज ने विठ्ठल जोशी को बीडकर मठ में दत्तावतार अक्कलकोट निवासी श्रीस्वामी समर्थ जी के रूप में दर्शन दिए और अपने शिष्य के रूप में उनका कृपापूर्वक स्वीकार किया। श्रीविठ्ठलराव जोशी महाराज सद्गुरु पाकर सनाथ बन गए।

श्रीमहाराज ने कुछ काल डॉ. बोस लेबोरेटरी में मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव के नाते काम किया। इस कार्य में उन्हें बड़ी सफलता मिली थी, लेकिन आध्यात्मिक जिज्ञासा उन्हें चुप बैठने नहीं देती थी। वे ई. स. १९४६ में नौकरी छोडकर रत्नागिरि में लौटे और कठोर साधना में लग गए।

श्रीसद्गुरु बाबा महाराज जी ने उन्हें बुला लिया और २४ जुलाई १९५३ के दिन उन्होंने अपनी उँगली से सर्पमुखी अँगूठी और छल्ला उतारकर श्रीमहाराज

की तर्जनी में पहना दिए। अपना अनुग्रह प्रदान करते हुए उन्होंने कहा, "गुरु की अंगूठी गुरु की उँगली में पहना दी है। विठ्ठल, आज से तुम्हारा पूरा अहंकार मैंने अपना लिया है। अब तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा सब कुछ मैं कर लूँगा।"

सद्गुरु श्रीबाबा महाराज ने सन १९५३ में देहत्याग करने का संकल्प किया। श्रीदिगंबरदास महाराज सद्गुरु के इस संकल्प से बड़े व्याकुल हो उठे। उन्होंने अपने गुरु को एक वर्ष और रहने के लिए मना लिया। श्रीबाबा महाराज ने १८ अगस्त १९५४ के दिन अपनी अवतार-लीला समेट ली। उनकी समाधि निजी जगह में-९३७ डी, चतु:शृंगी मार्ग, शिवाजी नगर, पुणे में बनाई गई।

श्रीबाबा महाराज की समाधि के बाद श्रीमहाराज ने अपना जीवन गुरु-सेवा में समर्पित करने का संकल्प किया। समाधि जिस स्थान पर बनाई गई थी, वह जगह श्रीबाबा महाराज की जायदाद थी। श्रीमहाराज ने श्रीबाबा महाराज की वारिस उनकी इकलौती कन्या सुश्री निर्मलाताई नीलकंठ खरे जी से वह जगह लीज़ पर ले ली और सद्गुरु की महिमा बढ़ाकर उनके लोक-कल्याण के कार्य को अपना जीवन-कार्य समझा। वे कहते थे, "२४ जुलाई १९५३ के दिन मेरा, विठ्ठल गणेश जोशी का अस्तित्व समाप्त हो गया। अब इस देह के द्वारा श्रीबाबा महाराज ही सब कुछ करवा रहे हैं।" अवस्था ऐसी थी कि -

जब मैं था गुरु नाहीं। अब गुरु हैं हम नाहीं॥

समाधि-स्थली प्रारंभ में झाड़ियों से भरी एक परती जमीन थी। श्रीमहाराज ने उसे समतल बनाकर उसपर अस्थायी शेड बना दी। चारों ओर दीवारें बनाईं। फिर भक्तों के लिए आवास स्थान और पानी के हौज़ बना लिए। रोज की पूजा के लिए ताजा फूल मिले, इसलिए बाग लगाया। उस स्थान से लगी हुई जमीनें खरीदकर परिसर का विकास किया। लेकिन दुष्ट लोग सत्कर्म को आसानी से करने नहीं देते। उन लोगों ने उस स्थान को सार्वजनिक बनाकर अपने कब्जे में करने की सोची। अदालतों के दरवाजे खटखटाए। लेकिन श्रीमहाराज ने कभी हिम्मत नहीं हारी। आखिर अदालत का फैसला हो गया कि देवस्थान पूरी तरह निजी संपत्ति है और उसके लीज़ होल्डर श्रीमहाराज ही हैं। इन खुराफाती लोगों

द्वारा सताए जाने पर भी श्रीमहाराज ने सद्‌गुरु श्रीबाबा महाराज के समाधि-स्थल को सुसज्जित और सुव्यवस्थित बनाया। वहाँ आध्यात्मिक उपासना चलने लगी। शास्त्रोक्त और विधिवत् अनुष्ठान संपन्न होने लगे। श्रीबाबा महाराज की जयंति-पुण्यतिथि, श्रीदत्तजयंति, श्रीस्वामी समर्थ जयंति, श्रीराम नवमी, श्रीगणेश चतुर्थी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी जैसे उत्सव उत्साह के साथ मनाए जाने लगे। असंख्य भक्त-गण इस स्थान में आकर कृपा-प्रसाद पाने लगे।

श्रीदिगंबरदास का व्यक्तित्व अनेक लोकोत्तर गुणों से संपन्न था। उनके संपर्क में आए किसी भी व्यक्ति का नाम, परिवार, व्यवसाय आदि की पूरी जानकारी उन्हें होती थी, चाहे वह वर्षों बाद मिला हो। सादगी, सफाई, अनुशासन, समय की पाबंदी, उदारता, सहृदयता आदि गुणों में वे अपना सानी नहीं रखते थे। छोटों से बड़ों तक सब से वे आत्मीय और ममतामय व्यवहार करते थे। उनके लिए कोई कठिनाई हो, तो उसे दूर करते थे। तो कभी ज़रूरत पड़ने पर किसी को कठोरता से डाँटने-फटकारने से भी नहीं चूकते थे। फिर भी थोडी देर बाद अपनेपन से उससे बातें करने लगते थे। भक्त के छोटे गुण पर रिझ जाते थे और उसकी बड़ी सराहना करते थे। उसे शाबाशी देकर अपने साथ भोजन के लिए बिठाते थे। सेवकों की पीड़ा-कष्ट को दूर करने का प्रयास करते थे। स्थान में पाले हुए तोते, कुत्ते जैसे जीवों को समय पर दाना-पानी मिलने के लिए उनका ध्यान रखते थे। वे सच्चे संत-सत्पुरुष थे।

वे समाधि-मंदिर में आनेवाले लोगों को कानूनी सलाह देते थे कि, बड़े-बड़े वकील भी चकित रह जाते थे। उनमें गज़ब की सूझ-बूझ थी। वे वैद्यकीय इलाज में या व्यावसायिक कठिनाइयों में अचूक मार्गदर्शन करते थे। समाधि-मंदिर को बनाते समय वे इंजिनियरों को भी समझाते थे कि क्या सही है और क्या गलत।

मंदिर के उत्सवों में जब पालकी-परिक्रमा निकलती थी, तब श्रीमहाराज स्वयं पद गाते हुए उसका रसपूर्ण निरूपण करते थे। वे आशुकवि थे। कीर्तन के समय उनके मुख से पद अपने आप झरने लगते थे। श्रीमहाराज ने सैंकड़ों-हजारों पद बनाकर गाए हैं। दुर्भाग्य से उनमें से बहुत कम अब लिखित रूप में बचे हैं।

वे पखवाज़-तबला जैसे साज बजाने में भी कुशल थे। वे नाटक खेलते थे। वे शिल्पकार भी थे। पोमेंडी में वे गणेश जी की मूर्तियाँ बनाते थे। उनमें चित्रकारी की भी प्रतिभा थी। चित्रकारों-शिल्पकारों को यथोचित सुझाव देते थे।

श्रीमहाराज खेती के भी बड़े जानकार थे। उन्होंने स्वयं हल जोतकर खेती की थी। खेती की नई-पुरानी प्रणालियाँ, भूमि की उर्वरकता, खाद, बीज आदि के बारे में वे किसी अनुभवी किसान से भी बढ़कर थे। उन्होंने अपनी पशुशाला बनाईं। पशुओं के बाड़े साफ-सुथरे हों, मवेशी पुष्ट हों, इसके लिए वे खुद ध्यान देते थे। बूढ़े जानवरों को कसाई के हाथ बेच देना उन्हें कतई पसंद नहीं था। वे मानते थे कि जानवरों से जीवनभर सेवा लेकर उनके बुढापे में उन्हें कसाई को बेच देना, यह मनुष्य की सरासर कृतघ्नता है।

वेद और वेद-प्रणित मार्ग पर चलनेवाले ब्राह्मणों के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी। वे कहते थे कि, "ब्राह्मणो मम दैवतम्।" वे मानते थे, "ब्राह्मणों ने हजारों वर्षों से बड़े कष्ट उठाकर वेदों की रक्षा की है, इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।" ब्राह्मणों के यथोचित सम्मान के लिए वे अनेक अनुष्ठानों का आयोजन करते थे और दूर दूर के विद्वान ब्राह्मणों को बुलाते थे। उनकी विद्वत्ता और कुशलता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर के उनका दिल खोलकर सम्मान करते थे।

श्रीमहाराज में जाज्वल्य धर्मनिष्ठा के साथ-साथ ज्वलंत देशनिष्ठा थी। उनके वचन में और आचरण में देश-प्रेम झलक उठता था। देवस्थानों में राष्ट्रध्वज को फहराकर स्वाधीनता-दिवस और गणतंत्र-दिवस मनाने की परिपाटी उन्होंने डाली। उन्होंने स्वयं १९४२ के आंदोलन में काम किया था। उन दिनों गाँव-गाँव घूमकर वे राष्ट्रीय जागरण करते थे और गुप्त रूप में आंदोलन का काम करते थे। जब स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी रत्नागिरि में थे, तब श्रीमहाराज उनसे मिलकर चर्चाएँ करते थे। उनकी यही राष्ट्रीय प्रेरणा डेरवण के श्रीशिव-समर्थ गढ़ के निर्माण में प्रकट हुई हैं।

श्रीमहाराज ने श्रीबाबा महाराज सहस्रबुद्धे जी के समाधि-मंदिर के साथ-साथ डेरवण को भी अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। चिपलूण परिसर में

अक्कलकोटनिवासी श्रीस्वामी समर्थ महाराज की परंपरा के एक सत्पुरुष, श्रीसंत दिगंबरबाबा वहालकर जी रहते थे। उनसे श्रीमहाराज का पुराना परिचय था। श्रीदिगंबरबुबा वहालकर महाराज जी के शिष्य श्रीसंत सीतारामबुवा वालावलकर जी के प्रति श्रीमहाराज के मन में बड़ा प्रेम था। श्रीबाबा महाराज ने श्रीसीतारामबुवा की देखभाल करने का भार श्रीमहाराज पर सौंपा था, इसलिए वे समय-समय पर सावर्डे गाँव में जाकर श्रीसीतारामबुवा मदद करते थे। उन्होंने देखा कि सावर्डे में श्रीबुवा को कष्ट हो रहे हैं, इसलिए उन्होंने पास के डेरवण गाँव में कुछ जमीन खरीदकर वहाँ उनके लिए घर बनाया और थोड़ी खेती का भी इंतज़ाम किया । श्रीमहाराज ने "श्रीसंत सीतारामबुवा वालावलकर चेरिटेबल ट्रस्ट" बनाया और वहाँ बड़े काम करने का संकल्प किया। उन्होंने आसपास की बहुत सारी जमीनें खरीदीं। वहाँ के गरीब लोग साहुकारों, महाजनों, मुसलमानों, और राजनीतिक नेताओं द्वारा सताए जाते थे। ट्रस्ट के द्वारा गरीबों के लिए अन्न, वस्त्र, कंबल मुहैया किए जाने लगे। उन्हें रोज़गार दिया जाने लगा। उनके औषधोपचार के लिए प्रबंध किया। उन्हें खेती के नए तरीके समझाए। उनकी बुरी आदतें छुडाने के लिए श्रीमहाराज बड़ी कोशिश करते थे। उनके बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देते थे। उनके लिए बहियाँ, पेन्सिलें, पुस्तकें आदि मुफ्त देते थे। घास-फूस के बने उनके घर बरसात के दिनों में टपकने लगते थे, इसलिए श्रीमहाराज ने हजारों घरों को मुफ्त में मंगलूरी खप्परों से छाज दिया। आसपास के गाँवों में पानी की कमी थी। ट्रस्ट द्वारा कोई २० किलो मिटर दूर चिपलूण से टैंकर द्वारा पानी लाकर दिया जाता था।

श्रीमहाराज गरीबों की आवश्यक जरूरतें पूरी कर के उनमें धर्म-प्रेम और देश-प्रेम भरना चाहते थे। उनके कामों से निहित स्वार्थों को धक्का पहुँचा। गरीबों को लाचार बनाने और उनका शोषण करने के शोषकों के तरीके बेकार होने लगे। तब वे खुराफातें कर के सताने लगे। लेकिन श्रीमहाराज ने इन संकटों का डटकर मुकाबला किया और अपना लोक-कल्याण का कार्य हिम्मत के साथ चालू रखा।

राष्ट्रनिष्ठा और धर्मनिष्ठा का आदर्श लोगों के सामने रखने के लिए

छत्रपति शिवाजी महाराज और श्रीसमर्थ रामदास स्वामी जी का स्मारक श्रीशिव-समर्थ गढ़ के रूप में श्रीमहाराज ने डेरवण में बनाया, जो अद्वितीय है। यहाँ छत्रपति शिवाजी महाराज का जन्मोत्सव धूमधाम के साथ मनाया जाता है। हजारों शिवाजी-प्रेमी और वारकरी भक्त बड़े प्रेम से भव्य जुलूस निकालकर पूरे परिसर को राष्ट्र-प्रेम और धर्म-प्रेम से भर देते हैं।

श्रीमहाराज ने प्रसिद्धि-पराङ्मुख रहकर लोक-कल्याण और परमार्थ-साधना को अथक परिश्रम के साथ जीवनभर चलाया और सनातन वैदिक आर्यधर्म का ध्वज सदा फहराए रखा। इस कार्य को करते-करते उन्होंने वैशाख कृष्ण प्रतिपदा, शके १९११; रविवार, दि. २१ मई १९८९ के दिन अपनी जीवन-लीला समेट ली।

अब उनके कार्य का बड़ा विस्तार हुआ है। उनके उत्तराधिकारी प. पू. श्रीअशोककाका महाराज अपनी पूरी शक्ति के साथ अपने सद्गुरु का वैभव बढ़ाने में लगे हैं। श्रीमहाराज की प्रेरणा से डेरवण में श्रीराम मंदिर, श्रीस्वामी समर्थ मंदिर और श्रीस्वामी समर्थ उद्यान बना हैं। पास में सुसज्जित अँग्रेजी स्कूल और श्रीमहाराज के शिष्योत्तम भक्तश्रेष्ठ कमलाकरपंत लक्ष्मण वालावलकर के नाम से एक बहुत बड़ा अस्पताल खड़ा हुआ है। यह २०० बेड्सवाला हॉस्पिटल सुसज्ज है। यहाँ सभी वैद्यकीय सुविधाएँ और उपचार उपलब्ध हैं। यह इंटरनेट से जुड़ा है। यहाँ देश-विदेश के तज्ज्ञ डॉक्टर आते हैं। डॉ. बाणावली के प्रयासों से और मुंबई के टाटा मेमोरियल की मदद से कैन्सर की जाँच और रोकथाम के लिए तीन ज़िलो में ८० डॉक्टर और कर्मचारियों का दल कार्यरत है। मुख के और गर्भाशय के कैन्सर का इलाज यहाँ मुफ्त किया जाता है। वहाँ एक सुसज्जित नर्सिंग कॉलेज भी बना है। मुंबई (अंधेरी पश्चिम) में अक्कलकोटनिवासी श्रीदत्तात्रेयावतार भगवान् श्रीस्वामी समर्थ का बड़ा सुंदर मंदिर बन गया है। पुणे में श्रीबाबा महाराज सहस्रबुद्धे समाधि मंदिर के पास श्रीमहाराज का समाधि-मंदिर खड़ा हुआ है। इन सभी स्थानों में नित्य और नैमित्तिक अनुष्ठानों-उत्सवों द्वारा धर्मजागरण का और उसके द्वारा लोगों के चारित्र्य-निर्माण का महान् कार्य हो रहा है, जो श्रीमहाराज की अक्षय कीर्ति फैला रहा है।

* * *

श्रीरामानंद-स्तवन

(श्रीबीडकर महाराज जी के प्रशिष्य तथा श्रीबाबा महाराज सहस्रबुद्धे जी के शिष्योत्तम श्री वि. ग. जोशी ऊर्फ श्रीदिगंबरदास महाराज जी द्वारा विरचित)

संसार में दुःख पा बहुत, हो गए आर्त आप।
ढूँढते अपने आराध्य को चले छोड़ सार्थ आप।
श्रीस्वामी समर्थ गुरुदत्त मिले, हुआ जन्म सार्थक।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ १

स्वामी ने कर रखा सिर पे, हुआ तूर्या-सुख-प्राप्त
मन बना उन्मन आपका मुक्ति-सुख में हो लिप्त ।
छोड़ सारा लौकिकार्थ बन गए स्वरूपोन्मुख ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ २

गुरु-आज्ञा सिर आँखों उठा पहुँचे रेवा जी के तट।
कष्ट उठाते आपने की नर्मदा-परिक्रमा विकट ।
गुसाईं सता आपको बना अंत में सेवक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ३

पत्थरगीर बाबा को आपने दिया सत् का ज्ञान।
साने स्वामी को दिया निजात्म सुख का दान।
पूर्णानंद गुरुस्वरूप आपको मिल गए तृषाहारक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ४

स्वामी मिले वहाँ आपको ले बाघ का रूप।
'मैं हूँ संसार में' की दी अनुभूति अनूप।
चरणों में लोटते अहं मिटा , स्वामी बने तारक ।
रामानंद गुरो , आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ५

घडियाल भरे जल में कूद आपने दिखाई लीला ।
देह-ममता भरमाती जग को, संन्यासी को दिखला ।
सत्य-ज्ञान की दे प्रतीति हुए आप स्वरूपोन्मुख ।
रामानंद गुरो, आपके पदों मैं रखता हूँ मस्तक ॥ ६

मठपति की कन्या आई करने आपको मोहित ।
अंतर्मुख बना वृत्ती अपनी, मोह को किया लज्जित ।
तेजोध्यान में क्षण-क्षण रम, बने जीवों के प्रेरक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ७

पागल ने किया हठ, ला देना बाण अभीष्ट ।
जल में कूद ला चंद्रशेखर, किया उसे संतुष्ट ।
लोगों ने की सराहना चमत्कारों को देख ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ८

कनौजिया नारी को दे दी खरी स्वरूपता ।
आत्मनात्म-विचार-बोध में उसने पाई तद्‌रूपता ।
द्वंद्वातीत सदा आप बने सद्‌बुद्धि के प्रेरक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ९

वेदों से परे निजात्म-सुख जो आपने जगाया ।
नित्यानंद- पद में बसा शिष्यों को चरणों में लगाया ।
रक्षा कर भक्तों की देते इह-पर-लौकिक सुख ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ १०

श्रीस्वामी आज्ञा से जीवों को मार्ग बताया अच्छा ।
तत्त्वमसि कर बोध भवहारक दे बनाया प्रबुद्ध सच्चा ।
पूर्ण प्रेम-कृपार्द्र दृष्टि आपकी त्रयताप संहारक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ ११

रावसाहब बाबा के माथे रख हाथ ले गए परे ।
कृतार्थ बना, आज्ञा दी सत्वर स्व-रूप में धरे ।
चलाने संप्रदाय अपना, बनाया उन्हें कारक ।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ १२

पुण्य-दिवस पर आपके चरणों में वाक् पुच्छ अर्पण ।
संतुष्ट हो जीवों को सुख देना, माँगू वरदान ।
इस दास को स्वरूप में रमा देना नित्य आत्म-सुख।
रामानंद गुरो, आपके पदों में रखता हूँ मस्तक ॥ १३

रामानंद-स्तवन का पाठ सदा करते , बुद्धि है मिलती।
नित्यानंद में रमण कर के पूरी अहंता गल जाती।
चरणों में झुकते नम्र भाव से जलती है कल्पना।
मोक्ष मिलता उन्हें, करते जो यह साधना॥ १४

॥ श्रीसद्गुरुचरणारविंदार्पणमस्तु॥

श्रीबीडकर महाराज जी की जन्मकुंडली

(ज.स. ऊर्फ तात्यासाहब करंदीकरकृत)

जन्म शके १७६०, माघ शुल्क ७, अष्टमी क्षय, समय-दूसरा प्रहर, अँग्रेज़ी तारीख २२ जनवरी १८३८, जन्म नक्षत्र-अश्विनी चतुर्थ चरण, मेष राशि, सूर्य, महानक्षत्र, रवि मकर राशि में।

जन्मलग्न में चंद्र होने से सारी कुंडली अलग से रखने की जरूरत नहीं। जन्म समय सही-सही नहीं है, अनुमानतः दूसरा प्रहर बताया है। इससे जन्मलग्न मीन मानें या मेष, इसके बारे में कुछ लोगों में संदेह है, लेकिन जातकतत्त्व के अनुसार सभी योग देखने पर जन्मलग्न मेष ही निश्चित किया है।

श्रीबीडकर महाराज जी के विचार

पारिवारिक सुख का रहस्य

१. घर में अनबन

घर में अगर एक भाई कमानेवाला हो और दूसरा बेकार हो, तो मन इतना उदार नहीं होता कि मेरे श्रम में और मेरे पैसे में दूसरा भाई हिस्सेदार हो। तब उनकी औरतों में छोटे-बड़ेपन की भावना घर करने लगती है। ननंद-भावजों में नहीं बनती, सास-बहू की नहीं बनती। इसका कारण होता है परिवार के मुखिया का छोटा मन। वह ध्यान न दे, तो चुगलियाँ शुरु हो जाती हैं। उनमें भरोसा करने पर परिवार की इमारत ढह जाती है। खान-पान को लेकर या कपड़ों को लेकर परिवार में मनमुटाव पैदा होता है। काम करने से कोई छीज नहीं जाता और काम न करने से बढ़ जात है। कोई थोड़ा-सा ज्यादा खा ले या अच्छे कपड़े पहने तो मन को बेचैन बनानेवाली क्षुद्र और छोटी-बुद्धि क्यों रखें? भाग्य से जो मिला है, उसीमें आनंद उठाएँ। मन की क्षुद्रता, छोटापन, कुत्सितता और असहिष्णुता-इन अवगुणों से पाप बढ़ जाते हैं। आप्त-इष्ट और आश्रित लोगों के असंतोष से हमारी अपनी तरक्की में बाधा आती है। इसलिए ये बातें आग की तरह जलाकर भस्म कर देनेवाली मानकर उनसे डरना चाहिए।

२. आपस की फूट

आपस की फूट की जड़, अत्यंत लोभ, मत्सर और अहंमन्यता में होती है। " मैं बड़ा हूँ ", ऐसा अहंकार मत रखिए। अपनी आमदनी का एक छोटा हिस्सा अगर दूसरे भाई को मिले तो उसके लिए चखचख मत कीजिए। मन ऐसा उदार बनाइए कि वह किसी चोर ने नहीं लूटा, अपने भाई के पास ही गया है। अपना पलड़ा हल्का हो रहा है, इसलिए दूसरे के पलड़े से निकाल मत लीजिए। उसके बदले अपने पलड़े को दूसरी चीजों को भरने की ईर्ष्या रखिए। घर के झगड़े

में बिचोलिए के मत ले आइए या कोर्टबाजी मत कीजिए। उसमें अपयश ही आता है। थोड़ी-सी हानि सहकर बड़प्पन पाइए। अपने लोगों की हाय पकड़ने से जितना नुकसान होता है, उतना नुकसान दुश्मन की तलवार भी नहीं कर सकती।

आरति श्रीसद्‌गुरु बीडकर महाराज जी की

जै देव, जै देव, जै जै गुरुराई।
सतगुरु रामानंद, करुनाकर सदई।। धृ०।।

साईं को मारग माँझ ऊँचे आप बड़े।
सरूप-संधान माँझ आतमराम खड़े।
जनहित कारजमों अपनी देह लगाई।
सबद अधूरे, रावरी कौनो करैं बड़ाई।। १

देहमों आतम दरसाय, जड़ भगतन को तारा।
बोधाम्रित पिला अघाय, कियो भव-नदी पार।
भगतन-हित दियो दुई इह-पर भव सुखारा।
करत चरन परस माया होय दुराई।। २

जीउ-सिवु का एका पलमों आप कराई।
सोऽहम्-भाव सों देत आतम रंग रंगाई।
करुनासागर सतगुरु भगतन देत तराई।
दास बिठु बंदौ पद-कमलनमों साईं।। ३

।। श्रीसद्‌गुरुचरणारविंदार्पणमस्तु।।